से ढके रास्तों से होकर मोटर द्वारा क्लिवलैण्ड पहुंचने में बिताना पड़ा। उक्त कैण्टन क्लब के अध्यक्ष को क्लब में स्वामी जी का व्याख्यान दिलाने के लिये १०० मील की यात्रा तयकर स्वामीजी को लाना पड़ा था। एक्रोन और कैण्टन में वेदान्त सम्बन्धी पुस्तकों की बड़ी मांग थी। यह देखकर बड़ा सन्तोष होता है कि देश में मनोविज्ञान शास्त्र की ओर खूब रुचि बढ़ रही है, जगह जगह पर क्लब स्थापित किये जा रहे हैं, जहां आधुनिक सिद्धान्तों के साथ प्राचीन वेदान्त की शिक्षायें भी दी जाती हैं। विकार रहित छात्र यह अच्छी तरह से समझने लग गये हैं कि आधुनिक भिन्न भिन्न विचार श्रोतों का जन्म स्थान उन्नत शिखर हिमालय पर्वत ही हैं जहां प्राचीन काल में आर्य ऋषियों ने एकान्त में बैठ कर योगाभ्यास किया था और मनोविज्ञान के उन सूक्ष्म सिद्धान्तों को ढूंढ़ निकाला था जिनका ज्ञान आज भी लोगों को कठिनाई से होता है। वेदान्त शिक्षा की प्राचीन प्रणाली का अर्वाचीन प्रणाली से सम्बन्ध होने पर, इसमें सन्देह नहीं है, कि अर्वाचीन प्रणाली को जोर पहुंच जायगा।

इलाहाबाद श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम का विवरण।

फरवरी १९२२

कुल ६९५ बाहरी रोगियों में ३७१ नये और ३२४ पहले के रोगी थे।

गत मास की बचत	॥≈)॥
इस मास की आय	६६)
कुल आय	६६॥≈)॥
कुल व्यय	६५॥≈)॥
रोकड़ी बाकी	१)

सेवाश्रम की सहायता के लिये भेजी गई रकम मन्त्री द्वारा सधन्यवाद स्वीकार की जायगी।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

—गीता

वर्ष १] सौर, ज्येष्ठ सम्वत् १९७९ [अङ्क ५

श्रीरामकृष्ण के उपदेश।

रुपये का घमण्ड न करना चाहिये। यदि कहो कि मैं धनी हूं तो धनी एक से एक बड़े हैं। सन्ध्या के बाद जिस समय जुगनू निकलता है वह समझता है कि मैं ही इस जगत को प्रकाश देता हूं। किन्तु जब तारे निकलते हैं उसका घमण्ड चला जाता है, उस समय तारे सोचते हैं कि हम संसार को प्रकाश दे रहे हैं, पर इसके बाद जब चन्द्रमा उदय होता है तब तारे भी लज्जाकर मलीन हो जाते हैं। चन्द्रमा भी मन में विचारता है कि हमारे प्रकाश से यह जगत हँस रहा है। देखते देखते जब अरुणोदय हुआ तब चन्द्रमा भी मलीन हो गया। थोड़ी देर बाद फिर दिखाई भी नहीं दिया। यदि धनी इनका विचार करें तो फिर उनको अपने धन का घमण्ड न रहेगा।

राजद्वार पर भीख मांगने जाकर यदि कोई आदमी लौकी, कोंहड़ा आदि सामान्य वस्तु मांगे तो वह बड़ा बेवकूफ होगा। राजाओं के राजा श्री भगवान के दर्वाजे पर जाकर ज्ञान भक्ति आदि रत्नों को न मांग, अष्ट सिद्धि आदि तुच्छ चीजों को जो मांगता है वह भी बड़ा अज्ञानी है।

प्रह्लाद के स्तव से प्रसन्न होकर भगवान ने पूछा "तुम कौन वर चाहते हो।" प्रह्लाद ने कहा, "भगवान, जिन्होंने मुझे कष्ट दिया है उन्हें तुम क्षमा करो। उनको दण्ड देने से तुम्हें ही कष्ट सहना पड़ेगा, कारण कि तुम्हीं सब प्राणियोंमें वास करते हो।

भक्त केशवचन्द्र को देखने की श्रीरामकृष्ण देव को बड़ी इच्छा हुई थी। उस समय केशव बाबू ब्राह्म समाजी भक्तों के साथ स्वर्गीय जयगोपाल सेन के बेलघरियावाले बगीचेमें रहते थे। हृदय मुकर्जी * को साथ लेकर और गाड़ी में बैठ कर श्रीरामकृष्ण देव बेलघरियावाले बगीचे में पहुंचे। उस समय केशव बाबू ब्राह्मसमाजी भक्तों के साथ तालाब में स्नान करने जाने की तैयारी कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें देखकर कहा कि इन्हीं की दुम गिर गई है। इसको सुनकर सब ब्राह्म-समाजी हँस पड़े। केशव बाबू ने उनसे कहा, तुम लोग हँसो मत, इन्होंने जो कुछ कहा है उसका कुछ अर्थ है। तब श्रीरामकृष्ण ने कहा, मेढकी को जितने दिन दुम रहती है उतने दिन वह जल में रहती है; दुम गिर जानेपर वह जलमें भी रह सकती है और स्थल में भी। उसी प्रकार भगवान को स्मरण करने से

* श्री रामकृष्ण परमहंस देव के भांजा।

जिसकी अविद्या दूर हो गई है वह मनुष्य सच्चिदानन्द रूपी समुद्र में डूब कर भी रह सकता है और संसार रूपी समुद्रमें भी रह सकता है।

हनूमानजीसे किसीने पूछा था "आज कौन तिथि है।" उन्होंने जवाब दिया मैं वार, तिथि नक्षत्र आदि ये सब कुछ नहीं जानता। मैं तो सिर्फ श्रीरामचन्द्रजीका चरण कमल जानता हूं।

हृदय मुकर्जी ने एक दिन श्रीरामकृष्ण देव से कहा था, मामा यदि आपके प्रति मां की इतनी दया है तो आप उनसे कुछ सिद्धाई (आश्चर्यजनक कार्य करने की शक्ति) क्यों नहीं माँग लेते। श्रीरामकृष्ण की उस समय बालक की सी अवस्था थी। हृदय मुकर्जी की उक्त बात सुन कर वे एक दिन (दक्षिणेश्वर में) चापा के पेड़ के पासवाले एक तालाब के किनारे बैठकर लड़के की तरह मां से कहने लगे—"मां हृदय कहता है तुम मां से कुछ सिद्धाई क्यों नहीं ले लेते ?" और मांका ध्यान करने लगे। इसके कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि काले किनारे की धोती पहने एक मोटी स्त्री शौच के लिये बैठी है। इसके बाद ही परमहंस देव आकर हृदय मुकर्जी से कहने लगे बेवकूफ, तूने मुझे क्या बुद्धि दी,अब मैं तेरी कोई बात न सुनूंगा। तेरी बात सुनकर ज्योंहीं मैं ने मां से कहा कि हृदय कहता है कि तुम माँ से कोई सिद्धाई क्यों नहीं ले लेते। बस मां ने उसी समय उक्त दृश्य मुझे दिखा दिया।

वैशाखी पूर्णिमा।

(श्री·········)

—:o:—

"धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे"

——गीता।

इसी शुभ एवं पवित्र दिवसमें भगवान गौतम बुद्धने जन्म धारण किया था, इसी दिवस में उन्होंने "निर्वाण" प्राप्त किया और इसी दिवस में वे महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए। यह दिवस केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों के ही लिये नहीं किन्तु संसार के समस्त सत्य के प्रेमियों के लिये पवित्र है।

पाली धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि गौतम बुद्ध २४ वें बुद्ध थे। उनसे पहिले २३ बुद्ध हो गये हैं और एक अभी होने वाले हैं।

दीपांकर पहिले बुद्ध थे। उनके समय में एक सुमेध नामक पुण्यात्मा ब्राह्मण थे जो युवाकाल में अपनी विशाल पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हुए। उन्होंने इस धनको संसार की भलाई के लिये व्यय करने का निश्चय करके अपने नौकरों को यह समाचार प्रकाशित करनेकी आज्ञा दी कि ब्राह्मण सुमेध के घर में जितना धन है वह सब दान में दिया जायगा। सात दिन तक उन्होंने गरीब और कङ्गालों को समस्त धन दिया और सातवें दिन संसार के सुखों को त्याग कर तपस्या करने के लिये हिमालय को प्रस्थान किया। एक दिन ब्राह्मण सुमेध ने हिमालय से अमरावती नगरमें आकर देखा कि सब मनुष्य अपने घर और गलियोंकी सजावट कर रहे हैं। उन्होंने इसका कारण पूछा तो लोगोंने कहा कि पुण्यात्मा बुद्ध दीपांकर के आगमन के लिये यह सब हो रहा है। बुद्ध शब्द मात्रके श्रवण से ही वे बड़े प्रसन्न हुए और उनका शरीर पुलकायमान हो गया।

उन्होंने भी बुद्ध के प्रति अपना आदर भाव व्यक्त करने के लिये मार्ग का एक भाग सजाने का निश्चय किया। सजावट पूर्ण होने के पूर्व ही बुद्ध अपने सिद्ध शिष्यों के साथ पीत वस्त्र धारण कर आते हुए दिखलाई दिये। पुण्यात्मा ब्राह्मण ने तब अपना शरीर ही बुद्ध को अर्पण करने का निश्चय किया और बुद्ध के चलने के लिए मार्ग में लेट गये। निकट आकर उस पवित्र आत्मा को देख कर बुद्ध रुक गये और शिष्यों को संकेत करके उन्होंने कहा, "यह पवित्र आत्मा यदि चाहे तो सिद्ध होकर निर्वाणको प्राप्त हो सकती है, किन्तु वह मेरे ही समान बुद्ध होना चाहता है, और मैं पहिले से कहता हूं कि गौतम नाम से यह शाक्य वंशमें जन्म धारण करेगा और असंख्य प्राणियों को संसार के दुःखों से रक्षा करेगा।"

ईसा मसीह के ६ शताब्दि पूर्व कपिलवस्तु नगर में इसी वैशाखी पूर्णिमा के दिन गौतम शाक्य वंश में उत्पन्न हुए। उनके पिता का नाम शुद्धोधन और माताका नाम माया देवी था। कहते हैं कि ये शाक्य राजा सूर्य वंश के हैं और उनके पूर्वज राजा इक्ष्वाकु थे। बालकके उत्पन्न होनेके सातवें रोज रानी माया का देहान्त हो गया और बालक का पालन पोषण मृत रानी की बहिन महा प्रजापती रानी गौतमी ने किया। बालक का नाम सिद्धार्थ रखा गया। यथा समय दरबारके ज्योतिषी युवराज सिद्धार्थ की जन्मपत्री बनाने के लिये बुलाये गये, किन्तु उनका कथन राजा शुद्धोधन और सबके लिये निराशाजनक था। उन्होंने कहा, "यह बालक मनुष्यों के दुःखों से दुखी होकर संसार का त्याग करेगा और फकीर बनेगा।" इस हृदय विदारक भाव को सुनकर राजा ने सोचा, "मेरा बालक मनुष्यों के दुखोंको कदापि नहीं जानेगा।" बालक के बढ़ने के साथ साथ

पिताकी चिन्ता भी बढ़ने लगी। राजा ने युवराज को मनुष्यों के दुखों के दृश्योंसे अलग, सुख ऐश्वर्य में रखने की ओर विशेष ध्यान दिया ताकि युवराज के चित्त में दुख और अशान्ति का भाव उदय न हो। राजा शुद्धोधन ने युवराज के लिए अत्युत्तम तीन महल बनाये, एक ग्रीष्म के लिये, एक वर्षा ऋतु के लिये और एक शीत काल के लिये।

किन्तु युवराज का हृदय दूसरों के कष्टों को देखकर चाहे वह मनुष्य हो अथवा पशु सदा दया और दुख से भरा रहता था।

उनका ऐसा दयामय स्वभाव था कि किसी टूटे हुए पंख वाली चिड़िया को देखकर भी निरन्तर रक्षा करना उनके लिये स्वाभाविक था। तीर और कमान से अपने मित्रों के समान वे गूंगे जानवरों का शिकार करके मनोरंजन करना नहीं चाहते थे। वे कहते थे कि छोटे भाइयों के दुख और क्लेश से प्रसन्न होना वे वीरोचित नहीं समझते।

सोलह वर्ष की उम्र में एक अत्यन्त रूपवती रमणी यशोधरा के साथ युवराज का विवाह हुआ। राजा ने दोनों के सुख और ऐश्वर्य में किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं होने दी।

एक आंसू अथवा एक आहका शब्द भी सिद्धार्थ के कानों तक नहीं पहुंचने दिया जाता था। और जब वे नगर में आने की इच्छा प्रकट करते तो नये मनोरंजन के पदार्थों से उनको भुलाने की चेष्टा की जाती थी। किन्तु होनहार प्रबल होती है। एक दिन रथ में बैठ कर सिद्धार्थ ने नगर में ले चलने के लिए सारथी छन्दक से कहा। राजा के अत्यन्त क्रोधित होने का कारण जानते हुए भी सारथीको किसी प्रकार भी युवराज की आज्ञा उल्लंघन करनेका साहस नहीं हुआ। वे नगरमें गये और उस

दिन प्रथमतः युवराज सिद्धार्थ ने जीवन को वास्तविक रूप में देखा। उन्होंने प्रत्येक श्रेणी और सम्प्रदाय के मनुष्यों को तदनुसार कठिन कार्य करते देखा। कङ्गालों को इधर उधर मांगते देखा। कुत्ते तथा अन्य क्षुधा पीड़ित पशुओं को रोटी के टुकड़ों पर झपटते देखा। सिद्धार्थ ने अपने सारथी की ओर देख कर कहा, "मैं यहां परिश्रम, दीनता और क्षुधा देख रहा हूं—किन्तु इसके साथ सौन्दर्य, प्रेम और प्रसन्नता मिश्रित है।" यह कहने के उपरान्त मनुष्य के तीन दुख—थकान, बीमारी और मृत्यु के दृश्य—उनके निकट आये। युवराज सिद्धार्थ के जीवन का उत्तम समय आ गया था। प्रथम थकन दांत और केश रहित एक कांपते हुए वृद्ध के रूपमें आयी। उसके अंधे आंखोंमें प्रकाश और कानों में श्रवण शक्ति नहीं थी। एक लाठी के सहारे झुक कर उसने वायु-ग्रसित हाथ भिक्षा के लिये पसारा। युवराज ने आगे बढ़ कर उत्सुकता के साथ भिखारी की आशा से भी बहुत अधिक दान दिया। युवराज ने अपने सारथी से उस मनुष्य के दुख का कारण पूछा। सारथी ने केवल अधिक वयस होना ही इसका कारण बतलाया। सिद्धार्थ को अपने पिता के और राज्य के मंत्रियों के श्वेत केशों का स्मरण हुआ और उन्होंने कहा, "किन्तु सब वृद्ध मनुष्य ऐसे ही नहीं होते!

सिद्धार्थ सन्नाटे में आ गये, त्रास और दया से भर गये। थोड़ी ही देर में क्या देखते हैं कि एक पीले दागों से भरा हुआ, चमड़ा जिसका सड़ गया है, देखने में भयानक ऐसा मनुष्य रथ के पास खड़ा है, भिक्षा के लिये पसारा हुआ हाथ भी उसका गल गया है। युवराज ने मधुर वाणी से भर कर उसको भाई कह कर सम्बोधन किया और सहानुभूति से कांपते हुए उसको एक अशर्फी दी।

गौतम ने कहा "यह जीवन है—जिसको मैंने उत्तम साचा था !" थोड़ी देर चुप हो कर वे सोचने लगे कि मनुष्य इस जीवन से किस प्रकार छुटकारा पा सकता है ? इतने में ही उन्होंने चार मनुष्यों को कंधे में एक मृत मनुष्य को ले आते हुए देखा। सिद्धार्थ ने सोचा कि मनुष्य मृत्यु नहीं चाहते। वे इसको मित्र नहीं किन्तु बुढ़ापे अथवा बीमारी से भी अधिक शत्रु समझते हैं।

इस प्रकार बुद्धिमान मनुष्यों के कथनानुसार सिद्धार्थ मनुष्यों के इन तीन दुखों से अत्यन्त दुखी हुए। उन्होंने भोजन और शयन करना भी छोड़ दिया। अर्द्धरात्रि के समय जब सब लोग सो जाते थे वे उठकर अपने कमरे में घूमते और खिड़की से बाहर की ओर देखते थे। इस प्रकार वे जीवन के स्वप्न को तोड़ने की चिन्ता में निमग्न रहते थे। उन्होंने सोचा कि इसी दुख के कारण मनुष्य घरों को छोड़ कर जङ्गलों में भस्म रमा कर रहते हैं। वे अवश्य कुछ जानते होंगे ! यही मार्ग है ! मैं भी इसी मार्ग का अनुसरण करूँगा। किन्तु अपने ज्ञान को ये लोग जन साधारण को नहीं बतलाते। मैं जब इस रहस्य को जान लूंगा तो मनुष्य मात्र को समझाने का प्रयत्न करूँगा। छोटे मनुष्य से लेकर बड़े २ मनुष्यों तक इसका प्रचार करूँगा। मुक्ति का मार्ग समस्त संसार के लिये उन्मुक्त होगा। यह सोच कर वे अपनी सोई हुई स्त्री के निकट गये और स्त्री और शिशु पुत्र को छोड़ कर जाने में कितने ही संकल्प विकल्प करने लगे। अन्त में अपने कार्य में अपनी स्त्री का भी भाग जान कर वे सोती हुई स्त्री से विदा हुए। छन्दक को जगा कर वे रथ में बैठ कर चले, रात्रि ही में सिद्धार्थ अपने पिता के घर से बहुत दूर निकल गये। प्रातःकाल छन्दक को विदा करके उन्होंने अपने अमूल्य

वस्त्र और जवाहिरों को उतार कर भस्म रमाया, दण्ड और भिक्षा पात्र लेकर गेरुये वस्त्र पहिने और साधु भेष धारण किया।

इस प्रकार २९ साल की उम्र में युवराज ने महान त्याग करके अपने मुल्क से मगध देश की राजधानी तक पैदल यात्रा की। यहां राजा बिम्बिसार ने उनसे भेंट की और अपना आधा राज्य देकर वहां रहने का अनुरोध किया। युवराज सिद्धार्थ ने राजा को अपना परिचय देकर कहा कि मैंने सत्य की खोज के लिये राजमहल के सुख का त्याग किया है। राजगृह को छोड़ कर वे अकेले ब्राह्मण ऋषियों की खोज में फिरे और कुछ काल तक अलार्कालाम और उद्रक रामपुत्र इन दो महा ऋषियों से अरूप बृह्मलोक की शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् वे उरुविल नामक ग्राम में आये और कठिन प्रण करके ज्ञान लाभ करने के लिये ६ साल तक कठोर तपस्या की। अनाहार से उनका शरीर अस्थिचर्मावशेष रह गया। एक दिन वे मूर्च्छित हो गये और उस दिन से उन्होंने कठोरता का मार्ग छोड़ दिया। अन्तमें निर्वाण चाहनेवाले ब्रह्मचारी के लिये मध्य का मार्ग ही उन्होंने उत्तम समझा। इसी मार्ग का उन्होंने अवलम्बन किया। इस समय उनके पांच ब्राह्मण साथियोंने उनका साथ छोड़ दिया। वे दोपहर के समय भोजन करने लगे इससे उनकी निर्वलता धीरे धीरे दूर हो गयी। बैशाखी पूर्णिमा के दिन बुद्धगया में वे एक बरगद के पेड़ के नीचे जाकर बैठे। वहां उनको सुजाता नामक एक रमणी के हाथ से भोजन करने के लिये खीर मिली। सायङ्काल में बोधी बृक्ष के नीचे बैठकर उन्होंने निर्वाण का ज्ञान प्राप्त होनेतक वहां से नहीं उठने का प्रण किया। रात्रिके प्रथम प्रहर में उनको भूतकाल देखने का

दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ और मध्य रात्रि में भविष्य के जाननेकी दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई, जिससे उनको इस बातका ज्ञान हुआ कि मृत्युके पश्चात् जीवनका क्या होता है। उन्होंने यह भी जाना कि मनुष्य मरता है और पुनः उत्पन्न होता है और अपने कर्मों के अनुसार सुख दुख का भोग करता है। उन्होंने रात्रि के अन्तिम प्रहर में सर्वज्ञता के प्रकाश को, कार्य कारण के सम्बन्ध को जाना और सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया। इसी समय से वे त्रिकालदर्शी बुद्ध हुए। इसी पूर्णता के प्रकाश में उन्होंने जाना कि जीवन की तृष्णा ही सब दुखों की मूल है। वासनाओं से छुटकारा पाकर मनुष्य स्वातन्त्र्य प्राप्त कर सकता है। वे इस स्वातन्त्र्य को निर्वाण कहते थे और इसके प्रयत्न के जीवन को शान्ति का मार्ग कहते थे। पूर्ण स्वतन्त्र्य के सुख भोग में उन्होंने सात सप्ताह बिताये। उनका इस संसार से सम्बन्ध नहीं रहा, वे सिद्ध हो गये। उन्होंने अनादि निर्वाण के सुख को प्राप्त कर लिया। उनके लिये जन्म और मरण कुछ नहीं रहा। दुखों का उनके लिये पूर्णरूपसे अन्त हो गया था, केवल ज्ञान और प्रेम ही शेष रह गया।

बुद्धदेव बुद्धगया से बनारस को अपने उरुविल के साथी पांच ब्राह्मणों को ढूंढ़ने को गये। वे उनको बनारस के निकट सारनाथ के हिरन-बाग में मिल गये। उन्होंने वहां मध्य के मार्ग का उपदेश किया। तीन महीने के पश्चात् बुद्धदेव के पाप और दुखों से मुक्त ६० भिक्षु थे। उनको यह आज्ञा दी गई कि अधिक मनुष्यों के सुख के लिये, हित के लिये दया से ऐसे सन्देश का प्रचार करें जो आदि मध्य और अन्त में मधुर हो। ६० सिद्ध अलग अलग दिशाओं को गये और स्वयं बुद्धदेव गया और उरुविल को लौट आये। उरुबिल में उन्होंने अग्नि-पूजक साधु कश्यप को उनके ५०० साथियोंके साथ अपना चेला बनाया। इसके पश्चात् अपने सहस्रों साथियों के साथ वे राजा बिम्बिसार के पास मिलने को राजगृह गये। राजा और उनके सब दरबारियोंने धर्म को ग्रहण किया। इस समय से ४५ साल तक वे समस्त भारतवर्ष में जाति भेद छोड़ कर राजा, रईस, छोटे, बड़े, कोढ़ी और कंगालों को धर्म का उपदेश देने लगे।

बुद्धदेव २ बजे उठ कर समाधि में बैठते थे और दिन में केवल एकबार भोजन करते थे। भोजन करने के उपरान्त वे प्रत्येक भिक्षु को निर्वाण प्राप्ति के लिये उपदेश देते थे। वे केवल दो घण्टा शयन करते थे और अपने भिक्षुओं को ४ घण्टा शयन करने को आज्ञा देते थे। भिक्षु समस्त स्थानोंमें घूम फिर कर बुद्धदेव के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। वर्षा ऋतु में घूमना बन्द किया जाता था और भिक्षु ३ माह तक एक स्थान में रहते थे। विशेष कर वे गावों में ठहरते थे, गांववाले उनके भोजन का प्रबन्ध करते थे और भिक्षु प्रतिदिन उनको उपदेश देते थे। समस्त वर्ष के लिये कार्य कार्तिक माह में निश्चित किया जाता था। किसी समय बुद्धदेव वर्षाऋतु में एकान्तवास करते थे, उस समय केवल एक भिक्षु जो उनकी सेवाके लिये नियत रहता था वही उनको देख सकता था।

बुद्धदेव ने सिद्धि प्राप्ति करने के सातवें महीने में जो भिक्षुओं की पहली सभा राजगृह में की उसमें भिक्षुओंकी संख्या १,२५० थी।

सिद्धिप्राप्त करने के १० महीने पश्चात् उन्होंने २०००० सिद्धोंके साथ अपने पिता की राजधानी को प्रस्थान किया। वहां उनकी स्त्री यशोधरा, पुत्र राहुल और उनकी मौसी महाप्रजापती

गौतमी ने जिन्होंने उनका लालन पालन किया था प्रव्रज्या धारण किया।

बड़े बड़े विद्वान ब्राह्मण पीले वस्त्र धारण कर भिक्षु बन गये। बुद्धदेव के दो प्रधान शिष्य सारीपुत्र और मोगल्लान ब्राह्मण वंश के थे। पीले वस्त्र धारण किये हुये लोगों में जाति-भेद नहीं था। वुद्ध विशुद्ध मगध की भाषा में उपदेश देते थे।

३५ साल की उम्र से ८० साल तक बुद्धदेव ने ४५ साल सांसारिक मनुष्यों के सुखके लिये कार्य किया। ८० साल की उम्र में वह पवित्र आत्मा अपना कार्य समाप्त करके वैशाखी पूर्णिमा को कुशीनारा के सालकुञ्ज में यह असार संसार छोड़ महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुई।

बौद्धधर्म और वेदान्त धर्म के तात्पर्य में विशेष भिन्नता नहीं है। कुछ मनुष्यों की धारणा है कि बौद्धधर्म हिन्दूधर्म से सर्वदा भिन्न है। वास्तव में यह सनातन धर्म का ही सम्प्रदाय विशेष है। किसी विशेष कुलमें जन्म लेने से श्रेष्ठ गिने जाने के जातिभेद की व्याख्या के बुद्ध विरोधी थे। पुरोहितों के धर्म की दुहाई देकर छल और कौशल से स्वार्थ-सिद्धि के वे घोर विरोधी थे। मनुष्यों के कर्तव्य कर्म के सम्बन्ध में पूछने पर वे कहते थे कि सच्चरित्र बनो और परोपकार करो। कोई तुम को मुक्ति प्राप्त करने में सहायता नहीं दे सकता—अपनी सहायता स्वयं करो—अपनी चेष्टा द्वारा अपनी मुक्तिका प्रयत्न करो। अपने सम्बन्ध में वे कहते थे—"बुद्ध शब्द का अर्थ आकाश के समान अनन्त ज्ञान-सम्पन्न हैं। मैंने वही अवस्था प्राप्त की है—तुम लोग भी उसके लिये यदि दृढ़ता पूर्वक चेष्टा करोगे तो तुमको भी सिद्धि प्राप्त होगी।" वे वासनाओं से रहित थे इसलिये उन्होंने स्वर्ग और ऐश्वर्य की आकांक्षा नहीं की। उन्होंने राज-सिंहासन की आशा और सब प्रकार के सुख को तिलांजलि देकर भारत के मार्गों में घूम फिर कर भिक्षावृत्ति द्वारा उदरपूर्ति की और समुद्र के समान प्रशस्त हृदयसे नरनारी औरअन्य जीव जन्तुओं के कल्याण के लिये कार्य किया। संसारमें वे ही एक महापुरुष हुये हैं जो यज्ञों में पशु-हत्या-निवारण के उद्देश्य से पशुओं के स्थान में स्वयं प्राण देने को सदा प्रस्तुत रहते थे। उन्होंने एकबार किसी राजा से कहा—"यदि यज्ञ में पशुहत्या करने से आपको स्वर्ग प्राप्ति में सहायता होती है तो नरहत्या करनेसे इससे और भी अधिक उपकार होगा—अतएव यज्ञस्थल में मेरा वध कीजिये।" राजा को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ। बुद्धदेव का विश्वास चाहे ईश्वर पर हो या न हो इससे हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं है. किन्तु भक्ति, योग और ज्ञान के द्वारा जो दूसरों ने सिद्धि प्राप्त की है उन्होंने भी वही सिद्धि प्राप्त की है। किन्तु केवल विश्वास करने ही से सिद्धि प्राप्त नहीं होती। वे कर्मयोग के आदर्शस्वरूप थे, और उन्होंने जो उच्चावस्था प्राप्त की है, इसीसे भलीभांति समझा जाता है कि हम भी कर्मों के बल से आध्यात्मिकता के सर्वोच्च सोपान में चढ़ सकते हैं। केवल धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में मौखिक बातों से लाभ नहीं होता, किन्तु निष्काम भाव से कर्म करने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

मेरी समर नीति।

[स्वामी विवेकानन्द।]

(गतांक से आगे।)

अतः भारतवर्ष में किसी प्रकार की उन्नति की चेष्टा करने के लिये आवश्यकता है कि पहले धर्म प्रचार किया जाय। भारतको सामाजिक अथवा राजनीतिक विचारोंसे भरने के पहले आवश्यकता है कि उसमें आध्यात्मिक विचार भर दिये जायें। पहला काम जिसपर हमे ध्यान देना चाहिये वह यह है कि हमारे उपनिषदों, हमारे पुराणों, और हमारे दूसरे शास्त्रों में जो अपूर्व सत्य छिपा है उसे इन सब ग्रन्थों से, बाहर निकाल कर और मठ समूह से बाहर निकालकर, जङ्गलों से बाहर निकालकर, सम्प्रदाय विशेष के मनुष्यों के अधिकार से बाहर निकाल कर समस्त भारतवर्ष में एकवारगी फैलाना होगा जिस में इन सब शास्त्रों में छिपा सत्य अग्नि की भांति देश भरमें उत्तरसे दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, हिमालय से कन्या कुमारी, और सिंधसे ब्रह्मपुत्र तक फैल जाय। प्रत्येक मनुष्य उन्हें जान ले, कारण कहा है कि पहले इसे सुनना होगा, फिर मनन करना और उसके बाद निदिध्यासन। पहले लोगोंको इस शास्त्र वाक्य को सुनने दो और जो व्यक्ति अपने शास्त्र के उस महान सत्य को दूसरों को सुनाने में सहायता पहुंचायेगा वह आज ऐसा कर्म करेगा जिसके बराबर दूसरा कोई कर्म होही नहीं सकता। व्यास भगवान ने कहा है—"इस कलियुग में मनुष्यों के लिये एकही धर्म शेष है, आजकल यज्ञ और कठोर तपस्याओं से कोई फल नहीं होता। इस समय दान ही एक मात्र कर्म है। और दानों में धर्मदान, अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञानदान ही

सर्वश्रेष्ठ है। दूसरा दान है विद्यादान, तीसरा प्राणदान और चौथा अन्न दान। इस अपूर्व दानशील हिन्दू जाति की ओर देखो, इस दरिद्र और अत्यन्त दरिद्र देश में लोग कितना दान करते हैं, उसका भी ध्यान करो। यहां का अतिथि सत्कार इस प्रकार का है कि कोई आदमी बिना अपने पास कुछ लिये उत्तर से दक्षिण तक यात्रा कर सकता है, हर स्थान में उसका ऐसा सत्कार होगा मानो वह मित्र ही है। यदि यहां कहीं पर भी एक टुकड़ा रोटी का रहेगा तो कोई भिक्षुक बिना खाये नहीं मर सकता।

इस दानशील देश में,हमें पहले प्रकार के अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान विस्तार के लिये साहस पूर्वक अग्रसर होने दो। और यह ज्ञान विस्तार भारतवर्ष की सीमा में ही आबद्ध नहीं रहना चाहिये, इसका विस्तार सम्पूर्ण जगत में करना होगा। यही अभी तक होता भी रहा है। जो लोग कहते हैं कि भारत के विचार कभी भारत के बाहर नहीं गये और जो लोग कहते हैं कि मैं ही पहला सन्यासी हूं जो भारत के बाहर धर्म प्रचार करने गया वे अपनी जाति के इतिहास को नहीं जानते। यह काम कई बार हो चुका है। जिस समय संसार को इसकी आवश्यकता हुई उसी समय निरन्तर बहने वाले आध्यात्मिक ज्ञान से संसार को प्लावित कर दिया। राजनीतिक ज्ञान का विस्तार अनेक सैनिकों को लेकर और बड़े उच्च स्वर से लड़ाई का बाजा बजाकर किया जा सकता है। लौकिक ज्ञान वा समाजिक ज्ञान का विस्तार तलवार और बन्दूक की सहायता से हो सकता है। किन्तु ओस जिस तरह अश्रुत और अदृश्यभाव से गिरने पर भी गुलाब की कलियों के समूह को खिला देती है उसी तरह आध्यात्मिक ज्ञान भी शान्ति से ही दिया जा सकता है। भारत

वर्ष ने बार बार इस आध्यात्मिक ज्ञान के उपहार को जगत को दिया है। जिस समय कोई प्रबल दिग्विजयी जाति उठ कर संसार की विभिन्न जातियों को एकता के सूत्र में बांधती है, रास्ता बना देती है जिसमें एक स्थान की चीजें सुगमता से दूसरे स्थान पर भेजी जा सकें, उसी समय भारत के समग्र संसार की उन्नति में जो अपना अंश उसे देना था अर्थात् धार्मिक ज्ञान उसे दे दिया। बुद्धदेव के जन्म लेने के बहुत पहले ही यह हुआ था। चीन, एशिया माइनर और मलाया द्वीप समूह में इस समय भी उसके चिन्ह मौजूद हैं। जिस समय उस प्रबल दिग्विजयी ग्रीक ने उस समय ज्ञात संसार के सब अंशों को एकत्र किया था उस समय भारत के आध्यात्मिक ज्ञान ने बाहर निकल कर संसार को प्लावित कर दिया था। पाश्चात्य देशवासी जिस सभ्यता का इस समय गर्व करते हैं वह उसी बड़ी बाढ़ का अवशिष्ट चिन्ह मात्र है। इस समय भी वह सुयोग उपस्थित हो गया है। इङ्गलैण्ड की शक्ति ने समस्त संसार की जातियों को एकता के सूत्र में बांध दिया है जैसा पहले कभी नहीं हुआ था। इङ्गलैण्डके मार्ग और आने जाने के दूसरे रास्ते संसार के एक स्थानसे लेकर दूसरे स्थान तक फैले हुए हैं! आज अङ्गरेजों की प्रतिभा के कारण संसार अपूर्व भाव से एकता सूत्र में ग्रथित हुआ। इस समय संसार के भिन्न भिन्न स्थानों में जिस प्रकार के व्यापारिक केन्द्र स्थापित हुए हैं वैसे मानव जाति के इतिहास में पहले कभी नहीं हुए थे। इस सुयोगमें भारतवर्ष ज्ञात अथवा भाव से उठ कर अपने आध्यात्मिक ज्ञान का दान जगत को दे रहा है। और वह उक्त सब मार्गों का अवलम्बन कर समस्त संसार में फैल जायगा। मैं जो अमेरिका गया वह मेरी या तुम्हारी इच्छा से नहीं हुआ किन्तु भारत के भगवान

की इच्छा ने जो उसके भाग्य को नियंत्रित कर रही है, मुझे अमेरिका भेजा और वही फिर इसी भांति हजारों आदमियों को संसार की सभी जातियों के निकट भेजेगी। संसार की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। यह भी करना होगा। तुमको भी भारत वर्ष के बाहर धर्म प्रचार करनेके लिये जाना होगा। इसका प्रचार जगत की सब जातियों और मनुष्यों में करना होगा। पहले यही धर्म प्रचार आवश्यक है। धर्म प्रचार करने के बाद उसके साथ ही साथ लौकिक विद्या और अन्यान्य विद्यायें आवेंगी जिनकी तुम लोगों को आवश्यकता है पर, यदि तुम लौकिक विद्या बिना धर्म के ग्रहण करना चाहो तो, मैं तुम से साफ साफ कहूंगा कि भारतवर्ष में ऐसा करने का तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ होगा, लोगों के हृदयों में यह प्रयत्न स्थान ग्रहण न कर सकेगा। अंशतः इसी कारण से बौद्ध धर्म के इतने बड़े आन्दोलन ने अपना प्रभाव यहां स्थापित न कर पाया।

इस लिये, मेरे मित्रो, मेरा विचार है कि मैं भारतवर्ष में कितने ही ऐसे शिक्षालय स्थापित करूं जहां हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। केवल मनुष्यों की आवश्यकता है और सब कुछ हो जायगा। किन्तु आवश्यकता है, वीर्यवान, तेजस्वी, विश्वासी और अन्त तक कपट रहित नवयुवकों की। इस प्रकारके १०० नवयुवकोंसे संसारके सभी भाव बदल दिये जा सकते हैं। और सब चीजोंकी अपेक्षा इच्छा-शक्तिका अधिक प्रभाव है। इच्छा-शक्तिके सामने और सब शक्तियां दब जायंगी। कारण कि इच्छाशक्ति साक्षात ईश्वर से निकल कर आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्व शक्तिमान,

है। क्या तुम इसमें विश्वास नहीं करते? सबके निकट अपने धर्मके महान सत्य समूहका प्रचार करो, संसार इसकी प्रतीक्षा कर रहा है। हजारों वर्षोंसे लोगोंको मनुष्योंकी हीनावस्थाका ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं हैं। संसार भरमें सर्व साधारणसे कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। कई शताब्दियोंसे वे ऐसे डराये गये हैं कि वे सचमुच ही करीब करीब पशुत्वको प्राप्त हो गये हैं। उन्हें कभी अपनी आत्माकी आवाज सुननेका मौका नहीं दिया गया। उनको इस समय आत्माकी आवाज़ सुनने दो, वे लोग पहचान लें कि उनमें छोटेसे छोटे मनुष्य में भी आत्मा मौजूद है। जो न कभी मरती है और न पैदा ही होती है। जिसको न तलवार काट सकती है न आग जला सकती है, न हवा सुखा सकती है और न जिसकी मृत्यु ही होती है, जो आदि और अन्त के परे है, जो शुद्ध स्वरूप, सर्वशक्तिमान और सर्व व्यापी है। उन्हें अपनेमें विश्वास करने दो, अंग्रेजों और तुममें किसलिये इतना अन्तर है? उनको अपने धर्म, अपने कर्त्तव्य आदिके सम्बन्धमें जो वे कहें कहने दो, मुझे मालूम है कि दोनों जातियोंमें किस चीजमें अन्तर है। अन्तर केवल यही है कि अंग्रेज अपने ऊपर विश्वास करते हैं और तुम लोग नहीं। जब वह यह विश्वास करता है कि मैं अंग्रेज हूं उस समय वह जो चाहता है वही कर डालता है। इस विश्वासके आधारपर उसके अन्दर छिपा हुआ ब्रह्म जाग उठता है। वह उस समय जो भी इच्छा करता है वही कर लेता है। तुम लोगोंको बताया गया है और शिक्षा दी गयी है कि तुम कुछ भी नहीं हो, और तुम कुछ नहीं कर सकते, इस भांति तुम प्रति दिन अकर्मण्य होते जाते हो। इसलिये हमें बलकी आवश्यकता है और अपनेमें विश्वास की। हम लोग दुर्बल हो गये हैं, इसी

लिये गुप्त-विद्या और रहस्य-विद्या धीरे धीरे हम में घुस आई हैं। चाहे उनमें अनेक सत्य क्यों न हों पर उनने हमें नष्ट कर दिया है। अपनी स्नायु को बलवान बनाओ। हमें लोहे के पुट्ठों और फौलाद के स्नायु की आवश्यकता है। हम लोग बहुत दिन रो चुके। अब और रोने की आवश्यकता नहीं है। अब अपने पैरोंपर खड़े हो जाओ और मनुष्य बनो। हमें ऐसे धर्म की आवश्यकता है जिससे हम मनुष्य बन सकें। हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है जिस से हम मनुष्य हो सकें। हमें मनुष्य बनानेवाली शिक्षा को सर्वत्र फैलाने की आवश्यकता है। सत्य की परीक्षा करने का यह उपाय है—जिससे तुम शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक निर्बलता आवे उसे जहर की भांति छोड़ दो, उसमें जीवन-शक्ति ही नहीं है, अतः वह सत्य नहीं हो सकता। सत्य बलप्रद है, सत्य पवित्रता है, सत्य ज्ञान देनेवाला है। सत्य को अवश्य ही बलप्रद होना चाहिये, जो हृदय के अन्धकार को दूरकर उसमें तेज का प्रकाश कर दे। यद्यपि इन रहस्य विद्याओं में कुछ सत्य है तो भी ये साधारणतया मनुष्य को निर्बल ही बनाती हैं। मेरा विश्वास करो, मैंने अपने जीवनभर में अनुभव किया है और इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि वे निर्बल करनेवाली हैं। मैं भारतके सभी स्थानों में घूम चुका हूं, सभी गुफाओं का अन्वेषण कर चुका हूं और हिमालय पर भी रह चुका हूं। मैं ऐसे लोगोंको भी जानता हूं जो अपने जीवन भर वहीं रहे हैं। मैं अपनी जाति से प्रेम करता हूं; तुम को हीनतर और वर्तमान अवस्था से दुर्बलतर नहीं देख सकता। अतः तुम्हारे लिये और सत्य के लिये हमें चिल्लाना होगा, "बस ठहरो"। अपनी जाति की हीनतर अवस्था के विरुद्ध हमें अपनी आवाज उठानी होगी। निर्बल करनेवाली

इन रहस्य विद्यायों को छोड़ दो और बलवान बन जाओ। तुम्हारे उपनिषत् आलोकप्रद, बलप्रद, दिव्य दर्शन शास्त्र हैं उन्हीं का आश्रय ग्रहण करो, और इन सब रहस्यमय दुर्बलता जनक विषयों को दूर करो। दर्शनशास्त्र का अवलम्बन करो, जगत के सब से बड़े सत्य बड़ी सरलता से समझे जा सकते हैं, उतनी ही सरलता से जितनी सरलतासे तुम्हारा अस्तित्व। उपनिषत् के सत्य तुम्हारे सामने हैं इनका अवलम्बन करो, इनके उपदेशों को कार्य में परिणत करो तो अवश्य ही भारत का उद्धार हो जायगा।

एक बात और कह कर मैं समाप्त करूंगा। लोग स्वदेश-भक्ति की चर्चा करते हैं। मैं स्वदेश भक्ति में विश्वास करता हूं पर स्वदेशभक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिये तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचारशक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हम को थोड़ी दूर अग्रसर कर देती है और वहीं ठहर जाती है। किन्तु हृदय के द्वारा ही ईश्वर प्रेरणा होती है। प्रेम असम्भव को सम्भव कर देता है। जगत के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अतः मेरे भावी संस्कारको, मेरे भावी देशभक्तो, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय में समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशुतुल्य हो गई है। क्या तुम हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भांति भूखों मर रहे हैं! क्या तुम समझते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझ कर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम कभी इस से अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना तुम्हारे रक्त में मिल कर तुम्हारी

धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिली है? क्या उसने कभी तुम्हें पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें दरिद्रता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम यश, स्त्रीपुत्र, सम्पत्ति, यहांतक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गये हो? तब जानो कि तुमने स्वदेशभक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है। जैसा तुम में से अधिक लोग जानते हैं। मैं धार्मिक महासभाके लिये अमेरिका नहीं गया था, किन्तु देशके जन-साधारण की दुर्दशा के प्रतिकार करनेका भूत हम में और हमारी आत्मा में घुस गया था। मैं १२ वर्षतक समग्र भारत में घूमता रहा पर अपने स्वदेशीवासियों के लिये कार्य करने का मुझे कोई अवसर ही नहीं मिला, इसी लिये मैं अमेरिका गया। तुम में से अधिकांश जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धार्मिक महासभा की कौन परवा करता था? यहां मेरे रक्त-मांस स्वरूप जनसाधारण की दशा हीन होती जाती थी, उनकी कौन खबर ले? स्वदेश हितैषी होने की यह मेरी पहली सीढ़ी है।

माना कि तुम अनुभव करते हो; पर पूछता हूं कि क्या केवल व्यर्थ की बातों में शक्ति-क्षय न करके इस दुर्दशा को निवारण करने के लिये तुमने कोई यथार्थ कर्तव्य पथ निश्चित किया है? लोगोंको गाली न देकर उनकी सहायता का कोई ठीक उपाय सोचा है क्या? स्वदेशवासियों को उनकी जीवन मृत अवस्था में बाहर निकालने के लिये और उनके दुःखों को कम करने के लिये कुछ सान्त्वनादायक शब्दों को खोजा है क्या? किन्तु इतने ही से पूरा न होगा? क्या पर्वताकार विघ्नबाधाओं को दबाकर कार्य करने की तुममें इच्छा है! यदि

सम्पूर्ण जगत तलवार हाथ में लेकर तुम्हारे विपक्ष में खड़ा हो तब भी क्या तुम जिसे सत्य समझते हो इसे पूरा करने का साहस करोगे? यदि तुम्हारे स्त्रीपुत्र तुम्हारे प्रतिकूल हों, यदि तुम्हारा धन चला जाय, यदि तुम्हारा नाम भी नष्ट हो जाय, तब भी क्या तुम इस में लगे रहोगे? फिर भी क्या तुम उसका पीछा करोगे और अपने लक्ष्य की ओर स्थिरता से बढ़ते ही जाओगे। जैसा कि राजा भर्तृहरिने कहा है—चाहे नीतिनिपुण लोग निन्दा करें वा प्रशंसा, लक्ष्मी रहे वा जहां उसकी इच्छा हो चली जाय, आज ही मृत्यु हो वा सौ वर्ष बाद, किन्तु धीर पुरुष न्याय के पथ से विचलित नहीं होते। क्या तुममें यह दृढ़ता है? यदि तुम में तीन चीजें हैं तो तुम में से प्रत्येक आदमी अलौकिक कार्य कर सकता है। तुमको समाचारपत्रों में लिखने की आवश्यकता नहीं, तुमको व्याख्यान देते हुए फिरने की आवश्यकता नहीं स्वयं ही तुम्हारे मुखपर एक स्वर्गीय ज्योति विराजेगी। यदि तुम पर्वत की कन्दरा में रहो तब भी तुम्हारे विचार पर्वत की चट्टानों को तोड़ कर बाहर निकलेंगे और सैकड़ों वर्षतक समग्र संसार में भ्रमण करते रहेंगे यहांतक कि वे किसी न किसीके मस्तिष्क का आश्रय ले लेंगे और वहीं अपना काम करने लगेंगे। चिन्ता-शक्ति, अकपटता अच्छे विचारों की यह शक्ति है।

मुझे डर है कि तुम्हें देर हो रही है। पर एक बात और कहूंगा। ए मेरे स्वदेश वासियो, ए मेरे मित्रों, ए मेरे बच्चों, जातीय जीवन का यह जहाज करोड़ों आदमियों को जीवन रूपी समुद्र के पार करता रहा है। इसकी सहायता से कई शताब्दियों तक लाखों आत्माएं जीवन-नदी के दूसरे किनारे पर अमृतधाम में पहुंची हैं। पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से

इस में कुछ खराबी हो गयी है इसमें एक छिद्र हो गया है, तो क्या तुम इसको निन्दा करोगे? संसार की दूसरी सब चीजों की अपेक्षा जो चीज हमारे अधिक काम आई थी, क्या इस समय तुम उसपर दुर्वाक्य बरसाओगे? यदि हमारे जातीय जहाज में, हमारे समाज में छिद्र हो गया है तो हम उसकी सन्तान हैं, आओ चलें, हम उसे बन्द कर दें। हमें अपने हृदय के खून को भी आनन्द पूर्वक देकर उसे बन्द कर देना चाहिये। यदि हम ऐसा न कर सके तो हमें मर जाना ही उचित है। हम अपने मस्तिष्क रूपी काठ के टुकड़े से उसे बन्द करेंगे। पर कभी उसकी निन्दा न करेंगे। कभी भी इस समाज के विरुद्ध एक भी कड़े शब्द का प्रयोग मत करो। मैं उस से उसके प्राचीन महत्व के लिये प्रेम करता हूं। मैं तुम सब लोगों से प्रेम करता हूं। कारण कि तुम देवताओं की सन्तान हो, प्रतिष्ठित पूर्वपुरुषों के वंशज हो। तब मैं कैसे तुम्हारी निन्दा कर सकता हूं। तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण हो। ए मेरे बच्चो, मैं तुम्हारे पास अपने सब उद्देश्य बताने के लिये आया हूं। यदि तुम मेरी बात सुनो तो मैं तुम्हारे साथ कार्य करने को प्रस्तुत हूं यदि तुम उन्हें न सुनो और हमें अपने पैरों की ठोकरें मारकर भारतभूमि के बाहर निकाल दो, फिर भी मैं तुम लोगों के पास आकर कहूंगा कि हम सबलोग डूब रहे हैं। मैं तुम लोगों के साथ मिलने के लिये आया हूं और यदि डूबना है तो हम सब लोगोंको साथ ही डूबने दो किन्तु किसी के लिये हमारे मुंह से खराब शब्द न निकलें।

भारत में श्रीरामकृष्णावतार ।

——:०:——

(ले०— श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी)

विधाता की सृष्टि भर में मनुष्य सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य पूर्णता का अधिकारी है। मनुष्य के सिवा और किसी भी जीव को मुक्ति या पूर्णता का अधिकार नहीं दिया गया,—देवताओंको भी नहीं।

पूर्णता या मुक्ति ही धर्म का सच्चा स्वरूप है। ऋषियों ने—न जाने—इसके कितने नामकरण किये। किसीने इसे ब्रह्म कहा, किसीने परमात्मा ; किसीने निर्वाण कहा तो किसीने कैवल्य पद। उसे और भी कितनी ही पदवियां दी गई'। किन्तु हरएक पदवी—हरएक शब्द एकही अर्थ का द्योतक है। अर्थात् ऋषियों ने जिन जिन शब्दों द्वारा उस पूर्ण ब्रह्म का बोध कराया है, उन शब्दों के अर्थ में कोई भेद भाव नहीं।

पूर्वोक्त ब्रह्म या पूर्ण पदपर प्रतिष्ठित होना ही मनुष्य का धर्म है। पूर्णताको प्राप्त करते ही मनुष्य का पहले क स्वरूप बदल जाता है। वह अपने को ब्रह्म से अभिन्न देखता है। उसमें फिर अभाव का लवलेश भी नहीं रह जाता। अभावों को दूर कर पूर्ण हो जाने के लिये ही मनुष्य की सृष्टि हुई है।

दूसरे जीव पूर्णता प्राप्ति या मुक्तिके अधिकारी नहीं। वे प्रकृति के दास हैं। वे अपने स्वभाव को नहीं बदल सकते। स्वभाव का सङ्गठन अभाव के अनुभव से होता है। भोग के लिये भिन्न भिन्न अभावों का अनुभव करके प्रकृति भिन्न भिन्न

जातियों की सृष्टि करती है। पहले का अभाव सृष्ट जाति का स्वभाव बन जाता है। संसार में जितनी जातियां दृग्गोचर होती हैं—सब में, एक एक अभाव का अनुभव अतः एक एक स्वभाव का प्रकाश लक्षित होता है। यह स्वभाव जीवों के चित्त पर वृत्ति के रूपसे स्थित रहता है। वृत्ति अभाव पूर्ति के लिये जीव को भोग की ओर खींच लेती और जीव भोग को ही श्रेष्ठ सुख मान लेता है। इन्द्रिय सुखसे बढ़कर और भी कोई सुख है, इसकी उसे कोई धारणा नहीं, न यह धारणाशक्ति उसमें पैदा हो सकती है। इसका कारण यह कि वह भोग योनि में पड़ा हुआ है। भोगयोनियों में अतीन्द्रिय सुखकी कोई सम्भावना नहीं। जो वृत्ति स्वभावतः भोगपर प्रीति रखती है, वह भोग सुख से मुख नहीं मोड़ सकती। और जबतक भोग सुख की लालसा क्षीण नहीं हो जाती तबतक जीव अतीन्द्रिय राज्य की ओर कदम नहीं बढ़ा सकता। केवल मनुष्य ही इन्द्रियातीत सत्तातक पहुंच सकता है। मनुष्य में भोग वृत्तियां दूसरे जीवों की अपेक्षा कम हैं। अतएव भोग द्वारा और और जीवों को जो सुख मिलता है वह सुख मनुष्य को प्राप्त नहीं। भोग वृत्तियों के कमजोर हो जाने के कारण ही मनुष्य में ज्ञान की मात्रा अधिक होती है। ज्ञान के द्वारा भोग-वासना को दबा कर मनुष्य अतीन्द्रिय राज्य की धारणा कर सकता है। ज्ञान, प्रेम, त्याग और विवेकादि सद्‌गुणों पर मनुष्यों का जन्म-सिद्ध अधिकार है। वह भोग में लिप्त नहीं रह सकता। उसे अभाव है तो पूर्ण सुख का अभाव है। उसके क्रिया कलापों को पूर्णता प्राप्ति के साधन समझ लेना चाहिये। उसकी चित्त वृत्तियां उसे शान्ति का रसास्वाद कराने के लिये निवृत्ति का स्वरूप धारण कर लेती हैं। इसका विस्तृत विवे-

त्रन विस्तार भय से हम यहां न करेंगे। केवल यह कह देना ही काफी होगा कि आज भी ऐसे मनुष्य हैं, जो निर्विकार-निरञ्जन-पूर्ण बने बैठे हैं। जिन्हें भोग-सुख की तो बात ही क्या, अपने शरीरतक की कोई खबर नहीं।

अस्तु, जिसने जीवों में अभाव की उत्पत्ति की उसने उन्हें वहीं स्थापित किया जहां उनकी अभावपूर्त्ति होती रहे। जिसने शेरकी सृष्टि की उसने उसे वहीं छोड़ा जो स्थान उसके रहने योग्य है और जहां उसे भोजन भी मिलता रहे। जिसने खटमल पैदा किये उसने उनके लिये स्थान भी सोच समझ कर निश्चित किया। जिसने हिरन को डरपोक बनाया उसने उसे भागने के लिये मजबूत पैर भी दिये। कहीं यह नहीं देख पड़ता कि आम के पेड़ में इमली लगी हो या मछली जमीन पर रेंगती हो या चमगीदड़ दिन में देखता हो। हर जीव के स्वभाव के अनुकूल पहले ही से की हुई एक व्यवस्था दिखायी पड़ती है। तो क्या शान्ति चाहनेवालों के लिये भी उसने किसी अनुकूल अवस्था की रचना की है? इसका जवाब भारत की प्राकृतिक परिस्थिति पर कुछ विचार करने से मिल जाता है।

भारत के प्राकृतिक नियमों की जाँच करने से उसके धर्म्म जीवन का पूरा पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है। षड्ऋतुओं का धीर तथा समवर्त्तन भारत की स्वभाव शान्त प्रकृति पर कोई अस्वाभाविक क्रिया नहीं उत्पन्न करता। हिमालय जैसे गम्भीर व सात्विक प्रकृति के लीलाक्षेत्र पर पड़ते ही दर्शकों का मन स्वभावतः अन्तर्मुखी होकर कवित्वमय भावराज्य की सैर करता है। भारत की उपजाऊ भूमि पेट के प्रश्न की मीमांसा कर देती—जीविकार्जन के लिये अन्यत्र अशान्ति की आग सुलगाने से निवृत्ति करके उसे शान्ति का पाठ पढ़ाती है। गङ्गा

जैसी स्वच्छतोय नदियों का जल उसके मनोमल को धो डालने के लिये सर्वथा समर्थ हैं, इसकी वैज्ञानिक व्याख्या विद्वान पाठक पढ़ चुके होंगे। प्रकृति की कुल चेष्टायें मानो भारत के धर्म धाम की रक्षा करने के लिये ही कर्मतत्पर हो रहीं हैं। इधर भारत अपने शब्दार्थ से भी अपनी धर्मप्राणता सूचित कर देता है। पूर्वोक्त कारणों से ही भारत ने पूर्ण सुखके न जाने कितने अधिकारी पैदा किये।

परन्तु, धर्म को मानते हुए हमें अधर्म को भी मान लेना चाहिये। क्योंकि सृष्टि में ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई शब्द नहीं, जिसका विरोधी गुण न हो। सत्य का स्वरूप सङ्गठन करते ही असत्य का भी चित्र खिंच जाता है। पुण्य का ग्रहण करते ही पाप भी अपने अस्तित्व की गवाही देने के लिये तैयार दिखाई देता है। सत्ययुग की सुन्दर कल्पना कीजिये तो कलि-काल की भी करालमूर्त्ति अङ्कित हो जायगी। अमृत का गुणगान कीजिये तो विषको भी अपनी तान छेड़ते हुए देखिये। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—"जड़चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन करतार।" गुण और दोषोंसे युक्त इस संसार में विरोधाभास सर्वत्र है। हरएक व्यक्ति—हरएक शब्द का विरोधी गुण उसकी प्रगति का निर्णय कर रहा है। संसार स्वयम् अपने शब्दार्थ द्वारा अपनी गतिशीलता दर्शा रहा है। प्रगति भले और बुरे के संघर्ष से ही होती है। प्रवाह का प्रमाण तभी पुष्ट होगा जब उसमें उत्थान और पतनशील तरङ्गें उठती रहेंगी। कवि कहता है—"उन्नति व अवनति ही प्रकृति का नियम एक अखण्ड है। चढ़ता प्रथम जो व्योम में गिरता वही मार्त्तण्ड है।" यदि विरोधी गुणों का त्याग व नाश कर दिया जाय तो संसारकी प्रगति रुक जायगी। प्रगतिके रुक जाने से न कोई भाव

पैदा हो सके ; न किसी की जबान खुल सके और न कोई कुछ लिख ही सके ; अभिप्राय यह कि सृष्टि ही असम्भव हो जाय। किन्तु सृष्टि को शास्त्रकारोंने अनादि माना है। अतः उसकी प्रगति भी अनन्त है। सृष्टिकी गतिशीलता के साथ साथ स्वाभाविक सङ्घर्ष द्वारा धर्म्म और अधर्म्म भी अनन्तकालतक गतिशील बने रहेंगे। धर्म और अधर्म की अन्तहीन प्रगतिका अनुभव करते हुए भगवान श्रीकृष्णजी ने धार्म्मिक भारत को जो अभय-वाणी सुनाई वह प्रत्येक भारत वासी को मालूम है :—

यदा यदा हि धर्म्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्म्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

भगवान श्रीकृष्ण महाराज की पूर्वोद्धृत पवित्रोक्ति के पाठ से ज्ञात हो जाता है कि समयानुसार अधर्म का भी अभ्युदय हुआ करता है। सत्ययुग के सत्य विकास द्वारा दबा हुआ कलिका कुत्सित कलेवर समयानुसार जिस प्रकार प्रकट हो जाता है,— सुख के संभोग द्वारा दबी हुई दुःखकी दीन दशा जिस प्रकार फिर दिखाई देती है,—जाग्रत के ज्ञान द्वारा दबा हुआ सुषुप्ति का घोर मोह जिस प्रकार फिर फैल जाता है, उसी प्रकारधर्म के प्रकाश द्वारा दबा हुआ अधर्म का अन्धकार समय पाकर संसार में अपना विस्तार कर लेता है।

अधर्म में पड़कर मनुष्य मुक्ति मार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं। भ्रमवशात भोग पर उनका अनुराग बढ़ जाता है। उन्हें इन्द्रिय सुख छोड़ और कुछ नहीं सोहाता। वे हिंसा द्वेषादि दुर्गुणों का आश्रय कर लेते हैं। उनकी एकता की डोर टूट जाती है और भेद भाव उनमें अड्डा जमा लेते हैं। यही दशा, समय के प्रभाव से, धार्मिक भारतकी हुई। उसकी वह वीणा जिसे लेकर वह एकता की तान छेड़ता था—खो गई। उसकी जगह मत भेदों के काले काले बादल घिर आये और बरस बरस कर फूट की जड़ पर पानी सींचने लगे। दिन पर दिन भारत के सिर पर किस तरह ठोकरों पर ठोकरें लगी, इसका ज्ञान हर एक पढ़े लिखे भारतवासी को होगा।

काल के चक्र से तथा कार्यकारणों के घात-प्रतिघातों से भारत की अवनति के आरम्भ के साथ पश्चिम में एक नई सभ्यता का विकास हुआ। इस सभ्यता की रोशनी से संसार भर की आंखों में चकाचौंध लग गई। इस सभ्यता का चश्मा नाक पर धर कर केवल अन्यान्य सारे देश अपने को सुदृष्टि सम्पन्न समझने लगे—सो नहीं, किन्तु भारत भी, पहले ही से दुरदृष्ट अतः दुर्दृष्टि हो जानेके कारण, उसे धारण कर अपने को दिव्य-दर्शन मान लेने लगा। इस सभ्यता का लक्ष्य है भोग।

पहले ही कहा जा चुका है कि भोग द्वारा मनुष्य तृप्त नहीं रह सकता। कभी न कभी उसे भोगकी असारता मालूम हो जाती है—उसका भ्रम दूर हो जाता है। पश्चिम के अनेक लोग भोग से उदास हो गये। उनकी अन्तरात्मा पुकार पुकार कर कहने लगी, "यह रस जो तुम पी रहे हो—अमृत नहीं ; इससे शान्ति नहीं मिल सकती।" वे शान्ति की खोज में व्याकुल हो रहे थे। किन्तु उसका मार्ग उन्हें नहीं मिला। भोग में पड़े रहने के कारण त्याग की धारणा उन्हें थी ही नहीं। और त्याग की उन्हें जरूरत भी नहीं थी। वे तो कुछ ऐसी वस्तु चाहते थे जिससे उन्हें शान्ति मिले। प्रार्थित वस्तु के न मिलने से स्वभावतः अन्तःकरण में अशान्ति की आग प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है।

दूसरे, मनुष्य जाति अगर भोग पर उतारू हो जाय और एक एक मनुष्य के भोग के लिये हर रोज हजारों मनुष्यों को

अपने अपने भोजनांश का अग्र भाग दे देना पड़े अथवा लाखों आदमियों को भूखे रह कर सिर्फ एक भोगी के भोग का सामान तैयार करना पड़े तो संसार में अशान्ति के फैल जाने में देर नहीं होती।

ऐसी दशा में शान्ति स्थापना की विशेष ज़रूरत होती है। भगवान श्रीकृष्ण महाराज ने इसी समय अपने आगमन का उल्लेख गीता में किया है।

अब अवतार पुरुषोंके अहं-तत्व पर भी कुछ विचार करना आवश्यक है। हमें जान लेना चाहिये कि अवतार कौन कहलाते हैं, उनका अहं भाव कैसा है, क्यों वे जगत पूज्य होते हैं, जीवोंके उद्धार की उन्हें क्यों सूझी-इत्यादि। इसका बोध गहन दार्शनिक विवेचन द्वारा कराने की अपेक्षा एक निरी सीधी बात से कराना कहीं अच्छा है। चक्रव्यूह या 'भूल भूलैया' के मार्ग में भटकते हुए मनुष्यों को बाहर वही निकाल सकता है जिसने उस मार्ग को बनाया है अथवा जिसे उस मार्ग से बाहर निकलनेका पहले ही से ज्ञान है। और, चक्रव्यूह के भीतर चक्कर खाते हुए मनुष्यों को उससे निकाल बाहर करना तभी सम्भव है जब निकालने वाला भी बाहर से चक्रव्यूह के भीतर घुसे। अधिकन्तु, मार्ग भूले मनुष्यों की जब बाहर निकलने की इच्छा होगी और रास्ता न मिलने पर व्याकुल होकर वे विलाप करते रहेंगे, तभी उनकी आवाज से आकृष्ट होकर बाहर का मार्ग बताने वाला मनुष्य भीतर घुसेगा। अवतार पुरुष इसी प्रकार संसार में आते हैं। उनके आनेका तात्पर्य सिर्फ दूसरों की मुक्ति से है। संसार के दृढ़ बन्धनों के बंधे हुए मनुष्य बन्धन मुक्ति के लिये कातर होकर मुक्त स्वभाव परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। उनकी प्रार्थना पूर्ण करने केलिये नित्य मुक्त

निराकार परमेश्वर को माया राज्य में—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के घेरे में–पदार्पण करना पड़ता है,—साकार होना पड़ता है। परन्तु यह स्मरण रहे कि 'भूल भुलैया' के मार्ग में भटकते हुए मनुष्यों को बाहर निकालने के लिये जो मनुष्य बाहर से भीतर घुसता है उसे कभी यह नहीं मालूम होता कि मैं भी भटक रहा हूं किन्तु वह जानता है कि इन भटके हुए मनुष्यों को बाहर ले जाने के लिये मुझे यहां आना पड़ा। अवतार पुरुष भी यहां आकर अपने शुद्ध स्वरूप को कभी नहीं भूलते किन्तु वे जानते हैं कि बद्ध जीवों को मुक्त करने के लिये—शान्ति संस्थापन के लिये हम यहां आये हैं। अवतार पुरुषों का अहंकार भ्रमशून्य है और साधारण मनुष्यों का अहंकार भ्रमपूर्ण। अवतार पुरुष माया की अहंकार सीढ़ीतक उतर कर साधनों द्वारा मनुष्यों को मुक्ति की शिक्षा देते हैं किन्तु उन्हें अपनी मुक्ति के लिये साधन की आवश्यकता नहीं-वे नित्य मुक्त हैं। उनके आदेशों को मनुष्य शिरोधार्य कर लेते हैं। उनके भ्रम रहित वाक्यों पर मनुष्यों का विश्वास जम जाता है।

इस बार अत्याचार पीड़ित और भोगान्ध मनुष्यों को शान्ति का पता बताने के लिये भगवान श्रीरामकृष्ण देव अवतीर्ण हुये। इस बार भी भारत शान्ति स्थापना का केन्द्र बना। संसार में आज जो आध्यात्मिक प्रवाह बह रहा है, उसकी उत्पत्ति भगवान श्रीरामकृष्ण—महान अध्यात्म तत्व स्वरूप से हुई। आज—विश्व समाज में भ्रातृत्व बन्धन की जो ध्वनि गूंज रही है, वह सब से पहले भगवान श्रीरामकृष्ण जी के मुख से निकली थी। विश्व विजयी वेदान्त केसरी स्वामी विवेकानन्द

की वीरवाणी को मन्त्र मुग्धवत् संसार सुन रहा है पर उसकी दिव्य शिक्षा भगवान श्रीरामकृष्ण देव के पदप्रान्त पर समाप्त हुई थी। आज भारत में एकता लतापर जो फूल खिल रहा है उसके निपुण माली हैं भगवान श्रीरामकृष्ण।

सामयिक प्रसंग।

("हिमारण्य")

मनुष्य के जीवन पर परिस्थिति का बहुत ही प्रभाव पड़ता है। जिस देश में वह पैदा अथवा शिक्षित हुआ हो उस का बहुत कुछ असर उस पर पड़ता ही है। क्या सभ्य देश और क्या असभ्य देश में, सभी जगह यह बात सत्य पाई जाती है। भारत भी इस नियम से बहिर्भूत नहीं। यहां भी देश की रीति-नीति और सामाजिक दशा देशवासियों पर बहुत प्रभाव डालती है। साधारणतया यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हम भी और और देशों के निवासियों की तरह अपनी परिस्थिति ही के फलस्वरूप हैं। दो चार 'अतिमानव' महापुरुषों की बात जाने दीजिये—वे तो सभी देश में अपनी अलौकिक शक्ति के बल से परिस्थिति की कुछ भी परवा नहीं करते, बल्कि उसी को बहुत कुछ सुधार देते हैं। इन इनेगिने शक्तिमानों को छोड़ बाकी सब लोगों को अपनी सामाजिक सत्ता की पाबन्दी ही करनी पड़ती है। मनुष्यों की समष्टि का नाम ही समाज है और समष्टि का प्रभाव व्यष्टि पर पड़े बिना नहीं रह सकता—इस लिये किसी समाज के अन्तर्भूत व्यक्तियों पर उस का प्रभाव पड़ता है या नहीं इसे सप्रमाण करने के लिये दलीलों की क्या आवश्यकता है?

* * * *

संसार में हरएक वस्तु एक दूसरी पर असर करती दीखती है। धधकती हुई आग के पास एक ठण्ढा बरतन रख दो, वह आपसे आप गरम होता जायगा। फिर हिमालय के ऊंचे स्थानों पर हवा इतनी ठण्ढी है कि वहां आग भी बड़ी मुश्किल से अपना काम निबाहती है। ऐसा सर्वत्र है। इसलिये सभी जगह और सभी काल में मनुष्य को अपनी जिन्दगी के लिये प्रकृति से लड़ाई करनी पड़ती है। अगर उसमें वह जीत सके तो वह जीता रहता है, और यदि हार जाय तो संसार से उसका अस्तित्व मिट जाता है। जीवन शब्द का अर्थ ही यह है—प्रकृति से लगातार लड़ाई करते रहना। मनुष्य की उन्नति का परिमाण इस संग्राम के फलाफल पर ही निर्भर रहता है। मनुष्यों की समष्टि—जाति—का भी यही हाल है। इसलिये प्रत्येक जाति को जगत में अपनी सत्ता और भलाई के लिये सदा ही कदम बढ़ाते रहना पड़ता है। इसमें जरा भी चूक हुई कि वह अपना अस्तित्व खो बैठती है।

* * *

इसमें एक और मजे की बात है, जिसे हम बहुधा भूल जाते हैं। वह यह, कि प्रकृति ने हमको ऐसा बनाया है कि अगर हम उन्नति की राह न पकड़ते हों तो वह हमें जरूर नीचेकी तरफ खींच ले जायगी। इसीलिये हर एक चिन्ताशील मनुष्यको सदैव उन्नति की जी जान से चेष्टा करनी चाहिये। हम भारत-वासी इस सीधी बात को भूल से गये थे। प्राचीन काल में भारतवर्ष धर्म का लीला क्षेत्र था—उस जमाने में हम सब आर्य-सन्तान कहलाने में अपने को गौरवान्वित समझते थे। इसी कारण से हमारी दशा समय के फेर से बहुत बदल जाने पर भी

हम अब भी उसी पुराने गौरव का स्वप्न देखा करते हैं। आर्य ऋषि जगत के आदर्श माने जाते हैं —क्या उनके वंशज हम भी उसी सम्मान का दावा नहीं कर सकते ? यही हमारा कहना है। फिर दुनिया क्यों हमारे इस ख्याल को मानने लगी ? उसने साफ साफ कह दिया कि तुममें योग्यता हो तो उसे काम में दिखाओ, सिर्फ जबानी जमा खर्चसे क्या लाभ ? लेकिन हम तब भी अपना ठीक ठीक हाल मालूम न कर सके। भारतवर्ष सत्वप्रधान देश है, अतः हम सात्विक अवश्य हैं और हमारी बाह्य निष्क्रियता तमोगुण का फल कभी नहीं—यही हम मन ही मन सोचने और उसी अपूर्व सिद्धान्त के अनुसार चलने लगे। होते होते हम प्रायः तमोगुण के समुद्र में डूब ही गये थे कि भारत के भाग्य विधाता ने हम पर कृपा करके वीर-सन्यासी स्वामी विवेकानन्द के मुंह से यह अमर वाणी हमको सुना दी कि, हे भारतवासी, उठो, युगयुगान्तर की मोह निद्रा से एक बार तो जाग पड़ो, देखो सत्वगुण के बहाने घोर तमोगुण ने तुमपर कैसा प्राणान्तकर प्रभाव जमा लिया है। अभी समय है, उठो, अपनी प्राचीन महिमा को फिर से अपना लो। जगत देखे कि भारतवासी अब भी वे ही भारतवासी हैं जिनमें से व्यास, वशिष्ठ, विश्वामित्र; राम, कृष्ण, बुद्ध; भीष्म, भीम, अर्जुन; सीता, सावित्री, द्रौपदी—पैदा हुए थे। आंखें पोंछते पोंछते हमने इस प्राणदायिनी वाणी को थोड़ा सुन लिया। पर क्या एक ही दिनमें इस विराट शरीर में चेतना आ सकती ? इस जागरण में समय की जरूरत थी। भरोसे की बात है कि हम उस वाणी को बिलकुल भूले नहीं।

* * *

भारतवासी अपनी सत्ता के सुधारने में दत्तचित्त हुए हैं।

सब भाई और बहनें मिलकर अपनी परिस्थिति को सुधारने के लिये कमर कसे हैं। आपस के छोटे छोटे झगड़ों को मिटाकर वे साधारण हित के लिये एकता के सूत से बंधे हुए भविष्य की ओर बढ़ रहे हैं। इस नई संहति से उनको एक अपूर्व लाभ हुआ है। वे एक प्रचण्ड शक्ति के अधिकारी हुए हैं। इस सम्मिलित शक्ति को ठीक रास्ते पर चलाने के लिये कुछ साधारण नियमों का पालन करना परमावश्यक है। यहां पर हम उनका कुछ दिग्दर्शन कराना चाहते हैं।

* * *

सबसे पहले हमें अपने साधारण लक्ष्य—उद्देश्य—की ओर दृष्टि रखनी चाहिये, क्योंकि बिना उद्देश्य को स्थिर रक्खे हम सीधे रास्ते पर चल ही नहीं सकते। ऊंची ऊंची लहरोंसे ढके हुए समुद्र में चलाने के लिये उसपर एक दिग्दर्शन-यन्त्र रहता है, जिसके भरोसे जहाज उस असीम जलराशि को पार कर ठिकाने पर पहुँच जाता है। उसी तरह हमें भी भारत की चरम सर्वाङ्गीय उन्नति पर सदा दृष्टि रखनी होगी। जब सब किसी का लक्ष्य एक ही होगा तभी मेलमिलाप स्थायी बना रहेगा। याद रहे कि यह उद्देश्य सबकी साधारण सम्पत्ति है —न कि किसी एक खास व्यक्ति की। इसलिये हमें एकता को धर्म समझ कर उसकी आराधना करनी होगी। एकता किस उपाय से बनी रहे ? त्याग के साधन से। हम सबको त्याग के मन्त्र से दीक्षित होना पड़ेगा। संहति को बनाये रखने का यही मूल मन्त्र है। अगर हम प्राचीन भारत को ओर एक बार आंख उठाकर देखें तो हमें स्पष्ट दीख पड़ेगा कि भारत की अतुल शक्ति का आधार यही त्याग था। भारतीय जनता उसी को बड़ा समझती है जिसमें वह त्याग का—दूसरों के

लिये अपना जान और माल निछावर करने का—आदर्श देख पाती। हमारे यहां आत्मपोषण, नहीं आत्म-विसर्जन ही महत्व की कसौटी समझा जाता है। पुराने युग में यही बात थी और अब भी यही है। इसलिये हमें सदा इसी सोचमें रहना होगा कि हम किस तरह अपने देशभाई के लिये स्वार्थ का त्याग कर सकें। स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि "सिर-दार तो सरदार।" जो विपदाओं के सामने सबसे आगे कदम बढ़ावें और उनके टल जानेपर लाभ का हिस्सा लेने में अपने को सबसे पीछे रक्खें, वे ही नेता कहलावेंगे। हम लोग बचपन से सुनते आये हैं कि घने जंगल में शेर बबर भी तपस्वियों के सामने अपना वैर छोड़ शान्तभाव से रहते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस संसार रूपी जङ्गल में भी बाघ भालू के से स्वभाव वाले मनुष्यों की कमी नहीं। और इनको वश में लाने का केवल एक ही उपाय है—वह है त्याग की अनोखी छटा इनके सामने रखना। बिना इसका उपयोग किये कोई भी इस दुनिया में जनसंघ का नेता नहीं बन सकता। भगवान बुद्ध का आदेश था—वैर से वैर हटता नहीं। कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलने का। दूसरी तरफ देखिये, त्याग की महिमा से कितने ही पापी साधु बन गये—उन पर तनिक भी जबर्दस्ती नहीं करनी पड़ी। जैसे सूर्य की अमल रश्मियों के आगे अंधेरा आप ही आप भाग जाता है वैसे ही सच्चे त्यागवाले साधु के सम्मुख अज्ञान मनुष्यों की बुराइयां जल्दी मिट जाती हैं।

* * *

जिसके दिल में त्याग का भाव आया हो वह सबको प्रेम भरी दृष्टि से देखता है। "घटघट बिराजे राम"—यह महासत्य

उसको साफ साफ मालूम हो जाता है। जहां त्याग है, निः-स्वार्थता है, वहीं प्रेम भी है। ये गुण नित्य-सम्बद्ध हैं। आप एक का अभ्यास करते जाइये; दूसरा भी आपमें स्वयं ही आ जायगा। साथ ही साथ एक लक्षण आप में दिखाई देगा—वह यह कि आप मन, वचन और कर्म से पवित्र हो जायँगे। किसी चरित्र को परखने में ये ही चिह्न हैं। जिसका चरित्र कलुषित हो उसमें न प्रेम ही मिलेगा और न त्याग। अगर ऐसा कोई आदमी लम्बी लम्बी बात बनावे तो उससे होशियार रहना। उसपर विश्वास करने से अनर्थ होगा।

* * *

एकता को दृढ़ करने के लिये हम में आपस की प्रीति रहनी चाहिये। नहीं तो सब धूल में मिल जायगा। साधारण प्रीति ही मुख्य साधन है, न कि साधारण द्वेष। द्वेष में तोड़ने की शक्ति है, बनाने की नहीं। वह शक्ति साधारण प्रीति ही दे सकती है। हमें देशोन्नतिके लिये आपस की फूट मिटाकर ऐसा वर्ताव करना चाहिये जिसमें पारस्परिक प्रीति की नींव दृढ़ हो जाय। यह प्रीति दिल में आने का एक उपाय है दूसरों के गुण देखना, और उनके दोषोंकी उपेक्षा करना। आपस के मेल मिलाप के लिये यही सरल मार्ग है।

* * *

हम लोगों को बलि होना चाहिये। दैहिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सब तरह की शक्ति हम में पूरी सञ्चित होनी चाहिये। इनमें आध्यात्मिक शक्ति है तो सबसे ऊंचे दर्जे की, पर यह कितनों में ठीक ठीक पाई जाती है? बिना हाथ पैर हिलाये बैठे रहने से ही यह शक्ति हम में पैदा हो गई है, यह ख्याल करना बिलकुल गलत है। इसलिये जो लोग

अभी परमहंस की पदवी को प्राप्त नहीं हुए उनको आध्यात्मिक शक्ति का दावा छोड़ धीरे धीरे और तीन प्रकार की शक्तियों का साधन करते रहना चाहिये। जिसमें समय पाकर इनके सहारे से वह श्रेष्ठ आध्यात्मिक शक्ति उनमें पैदा हो जाय। हमें कर्मी होना चाहिये —नररूपी नारायण की सब तरह की सेवा टहल करने में दिल से लगे रहना चाहिये —देह सुख को तिलांजलि देनी चाहिये। तब कहीं चित्त शुद्धि होकर हम में सत्वगुण का उदय होगा। अब सिंहवीर्य से कार्य में उतर पड़ना है।

वर्त्तमान भारत।

[स्वामी विवेकानन्द।]

(गतांक से आगे।)

ब्राह्मण ने कहा, "सब बलों का बल विद्या है, और वह विद्या मेरे अधीन है, इसलिये समाज मेरे शासन में रहेगा।" कुछ दिन ऐसा ही रहा। फिर क्षत्रिय ने कहा "यदि मेरा खड्ग न रहे तो आप अपनी विद्या सहित न जानें कहाँ चले जायं। मैं ही श्रेष्ठ हूँ"। क्रोध से चमकता हुआ खड्ग निकला और समाज ने उसके सामने सिर झुकाया। विद्योपासक ब्राह्मण ही पहले राजोपासक बने। तब वैश्य बोला, "पागल, जिसको तुम 'अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्' कहते हो वही सर्व शक्तिमान रुपया तो हमारे हाथों में है। देखो इसकी बदौलत मैं भी सर्व शक्तिमान हूँ। ब्राह्मणो, आप का तप, जप, विद्या, बुद्धि इसके प्रभाव से मैं अभी मोल ले लेता हूं। और राजाओ, ! आपका अस्त्र, शस्त्र, तेज, बल इसके बल से मेरी काम सिद्धि के लिये

बरता जायगा। यह जो बड़े बड़े पुतलीघर और कारखाने आप देखते हैं वह हमारे मधु के छत्ते हैं। लाखों कुली रूपी मक्खियां उसमें रात दिन मधु इकट्ठा करती हैं। परन्तु वह मधु कौन पीयेगा? मैं। समय पर उसकी एक एक बूंद मैं उसके पीछे से चूस लूंगा।

विद्या और सभ्यता का संचय जिस प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों के उदय काल में हुआ था, धन का संचय भी उसी प्रकार वैश्यों के प्रभुत्व काल में हुआ। जिस रुपये की झनक चारों वर्णों का मन हरण कर सकती है, वही रुपया वैश्योंका बल है। उसी धन को फिर ब्राह्मण ठगते हैं और क्षत्री बल से ले लेते हैं। वैश्यों को बस इसी बात का डर है। इसी कारण अपनी रक्षा के लिये वैश्य लोग सदा एक मत रहते हैं। सूद वैश्यों का कोड़ा है जिस से वह लोगोंके हृदयमें सदा धड़कन उत्पन्न करते रहते हैं। वणिक लोग राजशक्ति को अपने रुपये के बल से सदा दबाये रखते हैं। वह इस बात से सदा सचेत रहते हैं कि राजशक्ति उन्हें धन संचय करने में बाधा न डाले। परन्तु उनकी यह इच्छा कभी नहीं होती कि यह राजशक्ति क्षत्रिय कुल से शूद्र कुल में जाय।

वणिक किस देश में नहीं जाता। अज्ञ होकर भी वणिक एक देश की विद्या, बुद्धि, कला, कौशल, दूसरे देश में व्यापार के अनुरोध से ले जाता है। जो विद्या, सभ्यता और कला कौशल ब्राह्मणों और क्षत्रियों के समय समाज के हृत्पिण्ड में जमे हुए थे वही अब राजपथ रूपी नसों द्वारा चारो ओर वैश्यों के बाजारों में फैलने लगे। वैश्यों का उत्थान यदि न होता तो आज एक देश का माल, सभ्यता और विलास की सामग्रियां, दूसरे देशों में कौन ले जाता।

और जिन के शारीरिक परिश्रम पर ही ब्राह्मणों का आधिपत्य, क्षत्रियों का ऐश्वर्य और वैश्यों का धनधान्य निर्भर है वह कहां हैं ? समाज का मुख्य अंग होकर भी जो लोग सदा सब देशों में "जघन्य प्रभवोहिसः" कह कर पुकारे जाते हैं उनका क्या हाल है ? जिनके विद्यालाभ जैसे गुरुतर अपराध के लिये भारत में "जिव्हाच्छेद, शरीर भेद" आदि दण्ड प्रचलित थे, वही भारत के चलते फिरते मुरदे और दूसरे देशों के भारवाही पशु वही शूद्र, किस दशा में हैं ?

इस देश का हाल क्या कहा जाय। शूद्रों की बात तो अलग रहे, भारत का ब्राह्मणत्व अभी गोरे प्राफेसरों में है, और उसका क्षत्रित्व चक्रवर्ती अंग्रेजों में। उसका वैश्यत्व भी अंग्रेज व्यापारियों में ही है। भारतवासियों के लिये तो केवल भारवाही पशुत्व अर्थात् शूद्रत्व ही रहा। घोर अन्धकार ने अभी सब को समान भाव से ढंक लिया है। अभी चेष्टा में दृढ़ता नहीं है, उद्योग में साहस नहीं है, मन में बल नहीं है, अपमानसे घृणा नहीं है, दासत्व से अरुचि नहीं है, हृदय में प्रीति नहीं है और प्राण में आशा नहीं है। है क्या तो प्रबल ईर्षा, स्वजाति द्वेष, दुर्बलों को नाश करने की इच्छा और बलवानों के चरण चाटने की रुचि। इस समय धन और ऐश्वर्य दिखाने में तृप्ति है, स्वार्थ-साधन में भक्ति है, अनित्य वस्तु के संग्रह में ज्ञान है, पैशाचिक आचार में योग है, दूसरों के दासत्व में कर्म है, विदेशियोंकी नकल करने में सभ्यता है, कटु भाषण में वक्तृत्व है और धनिकों की खुशामद में या अश्लीलताके प्रचार में भाषा की उन्नति है। जब सारे देश में शूद्रत्व भरा हुआ है तो शूद्रों के विषय में अलग क्या कहा जाय। अन्य देशों के शूद्र कुल की नींद कुछ टूटी है। उनमें विद्या नहीं है। उनमें है उनका साधारण जाति गुण—

स्वजाति द्वेष। उनकी संख्या यदि अधिक ही है तो क्या ? जिस एकता के बल से दस मनुष्य लाख मनुष्यों की शक्ति संग्रह करते हैं वह एकता अभी शूद्रों से कोसों दूर है। इसलिये शूद्र जाति मात्र प्राकृतिक नियमों के अनुसार पराधीन है।

परन्तु आशा है। काल के प्रभाव से ब्राह्मण आदि वर्ण भी शूद्रों का नीच स्थान प्राप्त कर रहे हैं और शूद्र जाति ऊंचा स्थान पा रही है। शूद्रों से भरा, रोम के दास यूरोप ने क्षत्रियों का बल प्राप्त किया है। महा बलवान चीन हम लोगों के सामने ही किस शीघ्रता से शूद्रत्व प्राप्त कर रहा है और नन्हा सा जापान किस वेग से शूद्रत्व को झाड़ता हुआ ऊंची जातियों का अधिकार ले रहा है। यहां पर आजकल के यूनान और इटली के उत्थान का और तुर्क, स्पेन, आदिके पतन का कारण भी सोचने का विषय है।

तो भी एक ऐसा समय आवेगा-जब शूद्रत्व सहित शूद्रों का प्राधान्य होगा। आज कल जिस प्रकार शूद्र जाति वैश्यत्व वा क्षत्रित्व लाभकर अपना बल बढ़ा रही है उस प्रकार नहीं वरन् वह कर्म धर्म सहित समाज में आधिपत्य प्राप्त करेगी। पाश्चात्य जगत में इसकी लालिमा भी आकाश में दीखने लगी है, और इसका फलाफल विचार कर सब लोग घबराए हुए हैं। सोशिऐलिज्म(१),अनार्किज्म (२), निहिलिज्म(३) आदि सम्प्रदाय इसी विप्लव की आगे चलने वाली ध्वजाएं हैं। युगों से पिस

(१) सोषियेलिज्म (Socialism) एक मत है जिसमें लोकहित को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के ऊपर विशेषता दी जाती है। इसकी उत्पत्ति १८३५ ई०में युरोप में हुई थी। इसका प्रचार अब यहां के सब देशों में हो रहा है। इस मत के कई भेद हैं। इस के माननेवालों का मुख्य उद्देश्य यह है कि देश के मूलधन और भूमि का स्वामी समाज हो न कि व्यक्ति विशेष; अन्न का उपजाना और उसे लोगों में बांटना समाज द्वारा हो;

कर शूद्र मात्र या तो बड़ों के चरण चाटने वाले वा हिंस्र पशुओं की तरह निर्दय होते हैं। फिर सदा से उनकी अभिलाषाएं निष्फल होती आ रही हैं। इसी लिये दृढ़ता और अध्यवसाय उनमें नहीं है।

पाश्चात्य जगत में शूद्रों के उत्थान में विद्या का प्रचार होने पर भी एक बड़ी अड़चन रह गई है। वह इस कारण कि वहां लोग गुणगत जाति मानते हैं। उन लोगों की वर्ण व्यवस्था गुण कर्मों के अनुसार है। ऐसी ही वर्णव्यवस्था इस देश में भी प्राचीन काल में प्रचलित थी, जिस कारण शूद्र जाति की उन्नति नहीं हो सकती थी। एक तो शूद्रों को विद्या प्राप्त करने वा धन संग्रह करने का सुभीता ही नहीं था। दूसरे यदि एक दो असाधारण मनुष्य शूद्र कुल में कभी उत्पन्न भी होते तो उच्च वर्ण तुरत उन्हें उपाधियां देकर अपनी मण्डली में खींच लेता था। उन लोगों की विद्या और धन दूसरो जातियों के काम आता था। उनके सजातीय उनकी विद्या, बुद्धि और धन से कुछ भी लाभ नहीं उठाते थे। इतना ही नहीं; वरन् कुलीनों के निकम्मे मनुष्य अपने समाज से निकाल दिये जाते और शूद्र कुल में मिला दिये जाते थे।

बालकों को भोजन और शिक्षा मुफ्त दी जाय और पैतृक रिक्थ प्राप्ति की रीति उठा दी जाय।

(२) अनार्किज्म (Anarchism) इस सम्प्रदाय का प्रथम प्रवर्त्तक बकुनिन कहा जा सकता है जिसका जन्म १८१४ में हुआ था। बाह्य कर्तृत्व वा शासन के विरुद्ध आचरण करना इस मत का निचोड़ है। इस मत के माननेवाले कहते हैं कि यदि मनुष्य अपनी प्रकृति के नियमों के अनुसार चले तो राजशासन वा आईन की आवश्यकता नहीं है।

(३) निहिलिज्म (Nihilism) यह मत अनार्किज्म के ही ऐसा है। कुछ साधारण अन्तर दोनों में है। इसका जन्म रूस देश में १८६२ ई० में हुआ था। वहां इसका प्रचार भी है। इस मत के अनुसार तीन चीजें मिथ्या हैं ईश्वर, गवर्नमेंट, और विवाह।

वेश्या पुत्र वशिष्ठ(१) और नारद(२), दासी पुत्र सत्यकाम जावाल (३)धीवर व्यास(४), अज्ञात-पिता कृप(५), द्रोण(६), और कर्ण(७) आदि सबने अपनी विद्या और वीरता के प्रभाव से ब्राह्मणत्व वा क्षत्रित्व पाया। परन्तु इससे वेश्या, दासी, धीवर, वा सारथि कुल का क्या लाभ हुआ। फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य कुलसे निकाले हुए मनुष्य सदा शूद्र कुल में जा मिलते थे।

आज कलके भारत में शूद्र कितना ही बड़ा विद्वान वा धनवान क्यों न हो, उसे अपना समाज छोड़ने का अधिकार नहीं है। इसका फल यह होता है कि उसका विद्या बल और धन बल उसकी ही जाति में रह जाता है और उसके ही समाज का कल्याण करने में प्रयुक्त होता है। इस जन्मगत जाति की व्यवस्था से प्रत्येक जाति अपनी ही मण्डली के लोगों की उन्नति कर रही है। जब तक भारतवर्ष में जात्यानुसार दण्ड पुरस्कार न देने वाला राजशासन रहेगा तबतक नीच जातियोंकी इसी प्रकार उन्नति होती रहेगी।

समाज का शासन विद्या बल से प्राप्त हुआ हो वा बाहुबल से,अथवा धनबल सेपर उस शक्ति का आधार प्रजा ही है। शासक

(१) वशिष्ठ के पिता ब्रह्मा और माता अज्ञात थी।
महाभारत, आदिपर्व, अध्याय १७४ वा ऋग्वेद ७।३३।११-१३

(२) नारद की माता एक दासी पिता अज्ञात था। श्रीमद्भागवत १-६

(३) सत्यकाम जावाल की माता एक दासी और पिता अज्ञात था।
छान्दोग्य उपनिषद्। ४।४

(४) व्यास के पिता महर्षि पराशर और माता एक धीवर की कन्या।
महाभारत आदिपर्व अ० १०५

(५) कृप के पिता शरद्वान गौतम नाम का एक ब्राह्मण और माता जनपदी नाम की एक देवी। महा०। अ० १३०

(६) द्रोण के पिता महर्षि भारद्वाज और माता घृताची नामकी देवी।
महा० अ० १३०

(७) कर्ण की माता कुन्ती और पिता सूर्य। जन्म के बाद यह जल में फेंक दिया गया था। एक सारथि इसे इस दशा में देख अपने घर उठा लाया और पुत्रवत् पालन किया।

समाज जितना ही इस शक्ति के आधार से अलग रहेगा उतना ही वह दुर्बल होगा। परन्तु माया की ऐसी विचित्र लीला है जिनसे शक्ति ग्रहण की जाती है उनकी ही गणना शासकों के निकट शीघ्र बन्द हो जाती है। जिस समय पुरोहित शक्ति ने अपने को अपनी शक्ति के आधार प्रजा वर्ग से अलग किया तो प्रजा को सहायता देने वाली उस समय की राजशक्ति ने उसे पराजित किया। फिर जब राजशक्ति ने अपने को स्वाधीन समझा और प्रजा से अलग हुई तो प्रजा को उससे भी अधिक सहायता देने वाले वैश्य कुल ने राजाओं को अपने हाथ की कठपुतलियां बनाया। इस समय वैश्य कुल अपनी स्वार्थ सिद्धि कर चुका है, इसी लिये प्रजा की सहायता को अनावश्यक समझ वह अपने को प्रजा वर्ग से अलग करना चाहता है।

सारी शक्ति का आधार साधारण प्रजा है। तो भी इसने आपस में इतना भेद कर रखा है कि अपने सब अधिकारों से वह वंचित है। जबतक ऐसा भाव रहेगा तबतक उनकी यही दशा रहेगी।

यदि लोगों के विपद का वा घृणा और प्रीति का एक ही कारण हो तो ऐसे लोग एक दूसरे से सहानुभूति किया करते हैं। इसी नियम से बंधे हिंस्र पशु दल-बद्ध होकर फिरते और शिकार करते हैं, और इसी नियम से बँधे मनुष्य भी समाज बद्ध होकर रहते और जाति वा राष्ट्र का संगठन करते हैं।

एकान्त स्वजाति प्रेम और पर जाति विद्वेष राष्ट्र की उन्नति का एक प्रधान कारण है। इसी स्वजाति प्रेम और पर जाति विद्वेष ने ईरान द्वेषी यूनान को, कारथेज द्वेषी रोम को काफिर द्वेषी अरब जाति को, मूर द्वेषी स्पेन को, स्पेन द्वेषी

फ्रांस को, फ्रांस द्वेषी इङ्गलिस्तान और जर्मनी को और इङ्गलिस्तान द्वेषी अमेरिका को उन्नति के शिखर पर चढ़ाया है।

पहले पहले स्वार्थ ही स्वार्थत्याग सिखलाता है। व्यष्टि के स्वार्थों की रक्षा के लिये ही लोग समष्टि के कल्याण की ओर ध्यान देते हैं। स्वजाति के स्वार्थ में अपना स्वार्थ है और स्वजाति के हित में अपना हित है। बहुजन की सहायता और सहयोग के बिना बहुत से काम रुक जाते हैं, किसी प्रकार नहीं चल सकते; आत्मरक्षा तक नहीं हो सकती है। इसी स्वार्थ की रक्षा के लिए सब देशों और जातियों में सहकारिता पाई जाती है। तब यह स्वार्थ किसी जाति में कम और किसी में अधिक पाया जाता है। सन्तान उत्पन्न करने और किसी प्रकार पेट भरने का अवसर पाने से ही भारतवासियों की स्वार्थ सिद्धि हो जाती है। और इसके अतिरिक्त कि इसमें उच्च वर्णों के धर्माचरण में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। वर्तमान भारत में इस से बड़ी और आशा नहीं है। यही जीवन की सीढ़ी का सब से ऊंचा डण्डा है।

भारतवर्ष की वर्तमान शासन प्रणाली में कई दोष और कई गुण हैं। सब से बड़ा गुण तो यह है कि सारे भारत पर एक ही राजा का राज्य है जो बात इस देश में पाटलिपुत्र साम्राज्य के पतन के बाद नहीं पाई जाती है। जिस वैश्याधिकार की चेष्टा से एक देश के माल दूसरे देश में लाये जाते हैं उसी चेष्टा के प्रभाव से विदेशी भाव और विचार भी भारत की नसों में बल पूर्वक घुस रहे हैं। इन भावों में कुछ तो लाभ दायक हैं और कुछ हानिकारक और कुछ इस बात के परिचायक हैं कि विदेशी लोग इस देश का यथार्थ कल्याण निर्धारण करने में अज्ञ और असमर्थ हैं।

पुस्तक-परिचय।

१—शांति और आनन्दका मार्ग—

अनुवादक धर्मानन्द। पृष्ठ संख्या ७०, मूल्य ॥)। छपाई और कागज सुन्दर।

यह पुस्तक बोस्टन वेदान्त केन्द्र के अध्यक्ष स्वामी परमानन्द के 'The way of peace and blessedness' नामक अँग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद सुन्दर हुआ है और भाषा भी मनोहारिणी है। पुस्तक में आत्मा का मार्ग, सत्य की पूजा, यज्ञ जीवन आदि अनेक उत्तम विषयोंका विवेचन किया गया है। हमें आशा है कि हिन्दी साहित्य के प्रेमी इस का उचित आदर करेंगे। धर्म-ग्रन्थ-माला कार्यालय, बड़ा बाजार को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

२—देशबन्धु चित्तरंजन दास—आलोच्य पुस्तक बाबू सुकुमार-रञ्जन दास गुप्त लिखित बङ्गला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। पुस्तक के अन्त में देशबन्धु के कई महत्वपूर्ण अँग्रेजी भाषणों का अनुवाद जोड़ देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। अनुवादक धर्मानन्द हैं। पृष्ठ संख्या १५०, मूल्य १) है। छपाई और कागज उत्तम। पुस्तक मिलने का पता धर्म-ग्रंथमाला कार्यालय, बड़ा बाजार, कलकत्ता है। इस जीवन चरित्र में सच्चे देशभक्त चित्तरंजन की अनेक अमूल्य जानने योग्य बातें हैं। अभीतक देशबन्धु का इतना बड़ा जीवन चरित्र हमारे देशमें नहीं आया। अनुवादकी भाषा सरल और मर्मस्पर्शी है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक देशप्रेमी इस त्यागवीर के चरित्र को पढ़ें।

बिविध विषय।

रामकृष्ण मिशन विद्यार्थी आश्रम मायलापुर मदरास।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि रामकृष्ण मिशन विद्यार्थी आश्रम के अधिकारी एक रेजिडेन्शियल हाई स्कूल की स्थापना करनेवाले हैं। वे विद्यार्थी आश्रम को १७ साल से चला रहे हैं। इस आश्रम में आज तक केवल धार्मिक शिक्षा देने का ही प्रबन्ध होनेसे विद्यार्थियों को अन्य प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के लिये नगर के अन्य पाठशालाओं में जाना पड़ता था। अब इस व्यवस्था की ओर भी मिशन के अधिकारियों का ध्यान आकर्षित हुआ है। आश्रम की इमारत तैयार हो गई है। आश्रम में अन्य प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिये मद्रास सेक्रेटेरियट पार्टी ने और भी अधिक देने का वचन देकर ७०००) का दान टेकनिकल स्कूल की स्थापना करने के लिये दिया है। आश्रम के उन डिग्री-प्राप्त छात्रों से अधिकारियों को इस कार्य में बड़ी सुविधा और सन्तोष प्राप्त हुआ जिन्होंने बड़ा स्वार्थत्याग करके, केवल अपना निर्वाह मात्र करने के लिये वेतन लेकर स्कूल के लिये कार्य करना स्वीकार किया है। स्कूल का वार्षिक व्यय लगभग ६०००) होगा। इसमें २०००) प्रतिवर्ष सरकार से मिलने की आशा की जाती है; लड़कों से फीस नहीं ली जायेगी। स्कूल के व्यय के लिये ४०००) प्रति वर्ष और रसायन घर (Laboratory) के लिये कुल ६०००) की आवश्यकता प्रबन्धकर्ताओं को है।

आश्रम के अधिकारी गुरुकुल के आदर्श की प्राप्ति के लिये जनसाधारण से चन्दे के लिये प्रार्थना करते हैं।

चन्दा मन्त्री, रामकृष्ण स्टूडेण्ट्स होम, मायलापुर, मद्रास के पते से भेजना चाहिये।

रामकृष्ण मिशन विद्यार्थी आश्रम

११।१।१ कारपोरेशन स्ट्रीट, कलकत्ता।

यह आश्रम बेलूर मठ के एक सुयोग्य ब्रह्मचारी के उत्तम और सुन्दर प्रबन्ध के अधीन, व्यवहारिक, मानसिक और आध्यात्मिक शिक्षा के साथ साथ विश्वविद्यालय की शिक्षा प्रदान कर के शान्तिपूर्वक उत्तम कार्य कर रहा है। विद्यार्थियों के चित्त में उत्तम आदर्श बैठाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है जो उनकी उन्नति के लिये विशेष सहायक हों। गत वर्ष आश्रम में ८ विद्यार्थी थे जिनमें केवल एक विद्यार्थी खर्च देता था शेष सात निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते थे।

इस समय आश्रम एक किराये के मकान में है जिसमें केवल ८ विद्यार्थियोंके लिये स्थान है। आश्रम को एक इमारत की जिसमें कम से कम २० विद्यार्थी रह सकें और उनके पोषण के लिये द्रव्य की आवश्यकता है। आश्रम को इसके अतिरिक्त कलकत्ते के आसपास कुछ जमीन की व्यावहारिक शिक्षा के लिये एक बड़ी रकम की आवश्यकता है। हमें पूर्ण आशा है कि हमारे दानशील देशवासी इस आश्रम को आर्थिक सहायता प्रदान करेंगे।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, बनारस।

दुखी मनुष्यों के सच्चे प्रेमी स्वामी विवेकानन्द की सदिच्छा से सन् १९०० में प्रतिष्ठित, बनारस का यह सेवाश्रम विगत २१ साल से स्वामीजीके उपदेशानुसार देश के पुनरुत्थान के लिये, सेवा और त्याग के आदर्शों की प्राप्ति के हेतु बड़ा प्रयत्न कर रहा है। आश्रम के २०वें वार्षिक अधिवेशन के सभापति महाराजा दरभङ्गा ने कहा है, "मनुष्यों के दुखों को कम करने का आश्रम का वृहत प्रयत्न प्रत्यक्ष उदाहरण है।"

आश्रम असहाय दुखियों के रक्षार्थ इमारत बनाने के लिये द्रव्यकी अपील कर रहा है। द्रव्य के अभाव से इमारत अपूर्ण पड़ी हुई है। इस ब्लाक में प्रति कमरा १५००) के हिसाब से स्मारक कमरे बनाये जा सकते हैं।

समन्वय

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

——गीता

वर्ष १] सौर, आषाढ़ सम्वत् १९७९ [अङ्क ६

श्रीरामकृष्ण के उपदेश।

——:०:——

भगवान को पाने की व्याकुलता के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "जब दक्षिणेश्वर के मन्दिर में सन्ध्या को आरती का घण्टा बजता था तब मैं गङ्गा के किनारे जाकर रो रो कर चिल्ला कर कहता था कि मां दिन तो बीत गया पर तुम्हारा दर्शन तो मुझे अभीतक नहीं मिला।

छोटे २ बच्चे अपने घर में मौज से अकेले गुड़िया खेलते हैं, उनको न कोई डर है और न चिन्ता। ज्योंही मां आती है त्यों ही गुड़िया को छोड़कर मां २ करते हुए उसके पास दौड़ गये। तुम लोग भी इस समय, धन मान, यश रूपी गुड़िया लेकर निश्चित होकर संसारमें मौज से खेलते हो, तुम्हें न कोई डर है न चिन्ता। पर यदि तुम आनन्दमई मां को एक बार भी देख सको तो फिर तुम्हें धन, मान और यश अच्छा न लगेगा, सब को त्याग कर उस के पास दौड़ जाओगे।

—०—